

आचार्य कल्प प० टोडरमलजी रचित

मैं हों जीव द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरो ।

लग्यो है अनादित कल्क कर्म मल को ॥

साही को निमित्त पाय रागादिक भाव भये ।

भयो है शरीर का मिलाप जैसे खल को ॥

रागादिक भावनिको पायक निमित्त पुति ।

होत कर्मबन्ध एसी है बनाय कलको ॥

ऐसे ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग ।

बने तो बने यहाँ उपाय निज थलको ॥

तिस पर्याय विष जो कोय, देखन जानन हारो सोय ।

मैं जीव द्रव्य गुण भूप, एक अनादि अनन्त अरूप ॥

कर्म उदय को कारणपाय रागादिक हो है दुखदाय ।

से मेरे औपाधिक भाव इनको बिनशें मैं शिवराव ॥





श्री बीतरागाय नम ।

आचार्य कल्प श्री प० टोडरमलनी द्वारा विरचित
मोक्षमार्ग प्रकाशक के ७ वं अधिकार से सगृहीत

मोक्षमार्गकी वास्तविक दृष्टि

समदकर्ता —

पूज्य श्री भगत सुमेरुचन्दजी वर्णी एव श्री ब्रह्मचारी चादमलजी
जयपुर निवासी के प्रवचनों से प्रभावित होकर
श्री दशलाक्ष्णिर पर के उपलक्ष्य से धर्मपरतयणा
नित्य स्वाध्याय प्रेमिका श्रीमती भूगीयाइजी
पूज्य मातेधरी श्री सेठ कन्हैयालालनी काला की
ओर से सादर उपहार रूप से समर्पित ।

संशोधक तथा प्रस्तावना लेखक—

श्री प० कमलकुमार जी जैन शास्त्री गोइल्ल
न्यायव्याकरण, कायतीर्थ, साहित्य धर्मशास्त्री,
केलकच्छ ।

प्रकाशक —

श्रीमान् सेठ लालचन्द्र कन्हैयालाल काला
जियागज (मुर्शिदाबाद) बंगाल

प्रतिष्ठा
२५

बी नि सम्पत्
२४८२

{ मूल्य
५ पांच बार स्वास्थ
की प्रतिष्ठा

अवाहिर प्रेस
१६१११ हरीसन रोड,
कलकत्ता ७

विषय-सूची

क्र०	विषय	पृष्ठ
१	जावन परिज्ञय	—
२	प्रस्नानना	क
३	मङ्गलाचरण	ध
४	एकांत निश्चयालयी जैनाभास	१
५	केवलज्ञान निषध	२
६	कथंचित आत्मा ही रागादिक का करता है	५
७	अतरग बाह्य निमित्त मिलने मिलानेपर ही कार्य की मिद्धि होती है	८
८	बन्ध का सद्भाव	९
९	द्रव्य दृष्टिसे शुद्धता का वर्णन	१२
१०	शास्त्राम्याम की निरर्थकता का प्रतिषध	१४
११	बुद्धि की निर्मलता आत्म स्वरूप की स्थिरता में है	१६
१२	रत्नत्रय की पूर्णता ही मोक्षका मार्ग है	१७
१३	प्रतिष्ठा की उपादेयता का वर्णन	२१
१४	शुभापयोग सर्वथा हेय नहीं है	२२
१५	केवल निश्चयालयी जीवों की प्रवृत्ति	२४
१६	स्वद्रव्यपर द्रव्य चिंतन द्वारा निर्जरा, आस्रव और बंधका प्रतिषेध	३०

विषय-सूची

न०	विषय	पृष्ठ
१	जावन परिचय	१
२	प्रस्तावना	क
३	मङ्गलाचरण	५
४	एकांत निश्चयावलची जैनाभास	१
५	केवलज्ञान निषेध	२
६	कथंचित आत्मा ही रागादिक का करता है	५
७	अतरंग बाह्य निमित्त मिलने मिलानेपर ही कार्य की सिद्धि होती है	८
८	धन्ध का सद्भाव	६
९	द्रव्य दृष्टिसे शुद्धता का वर्णन	१२
१०	शास्त्राभ्यास की निरर्थकता का प्रतिपक्ष	१४
११	बुद्धि की निर्मलता आत्म स्वरूप की स्थिरता में है	१६
१२	रत्नत्रय की पूर्णता ही मोक्षका मार्ग है	१७
१३	प्रतिष्ठा की उपादेयता का वर्णन	२१
१४	शुभापयोग सर्वथा हेय नहीं है	२२
१५	केवल निश्चयावलची जीवों की प्रवृत्ति	२४
१६	स्वद्रव्यपर द्रव्य चिंतन द्वारा निर्जरा, आस्रव और बंधका प्रतिषेध	३०

न०	विषय	पृष्ठ
७	निर्विकल्प दशा विचार	३१
८	एकांतपथी व्यवहारावलम्बी जैनाभास	३६
९	कुल अपेक्षा धर्म विचार	३७
२०	परीक्षा रहित आह्वानुमारी जैनत्व का प्रतिषेध	३९
२१	आजीविकादि प्रयोजनार्थ धर्म माधनका प्रतिषेध	४६
२२	अरहत भक्तिका अ यथा रूप	५०
२३	गुरु भक्तिका अन्यथा रूप	५३
२४	शास्त्र भक्तिका अन्यथा रूप	५४
२५	एक भक्ति मात्र से आसन्नमध मन्धर निर्जरा की सिद्धि	६१
२६	सम्यग्ज्ञान का अन्यथा स्वरूप	७३
२७	सम्यक् चारित्र्य का अन्यथा स्वरूप	७८
२८	निश्चयव्यवहारावलम्बी जैनाभास	९६
२९	सम्यक्त्वके मन्धरा मिथ्यादृष्टि	११२
३०	पञ्च लक्ष्या का स्वरूप	११८





आचार्यरूप अनल्प ज्ञान जल निधि जल्प प० प्रवर टोडरमह जी
— जैन पुस्तक भवन कलकत्ता के सौजन्य से

जीवन परिचय

हिन्दी साहित्यके दिगम्बर जैन विद्वानार्जुन पण्डित टोडरमल शिखा नाम त्यासतौरसे उल्लेखनीय है। आप हिन्दीके गद्य-लेखक ज्ञानोर्मि प्रथम कोटिके विद्वान् हैं। विद्वत्ताके अनुरूप आपका स्वभाव भी यत्न और दयालु था और स्वाभाविक कोमलता सदाचारिता आपका जीवन सहचर थी। अहंकार तो आपको छूट कर भी नहीं गया था। आंतरिक भद्रता और वात्सल्यका परिचय आपकी शैम्य आकृतिको देखकर सहज ही हो जाता था। आपका रहन-सहन बहुत ही सादा था। आध्यात्मिकताका तो आपके जीवनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। श्री पुण्ड-कुण्डादि महान् आचार्योंके आध्यात्मिक-ग्रन्थोंके अध्ययन, मनन एवं परिशीलनसे आपके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा हुआ था। अध्यात्मकी चर्चा करते हुए आप आनन्द विभोर हो उठते थे, और श्रोता-जन भी आपकी वाणीको सुनकर गद्गद हो जाते थे। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंके आप अपने समयके अद्वितीय एवं सुयोग्य विद्वान् थे। आपका श्रयोपशम आश्चर्यकारी था, और यस्तु तत्वके विश्लेषणमें आप बहुत ही दक्ष थे। आपका आचार एवं व्यवहार विषकयुक्त और मृदु था।

यद्यपि पण्डितजीने अपना और अपने माता पिता एवं कुटुम्बी-जनोंका कोई परिचय नहीं दिया और न अपने लौकिक जीवन पर ही प्रकाश डाला है, फिर भी लघुसंसार ग्रन्थकी टीका प्रशस्ति आदि

मामर्षी परसे इनके लौकिक और आध्यात्मिक जीवनका बहुत कुछ पता चल जाता है । 'प्रस्ताविके' के पद्य इस प्रकार हैं —

“मैं हूँ जीव-द्रव्य नियम चेतना स्वरूप मेरयो, लम्बो है अनादिके
कटक कर्ममल्लो । तादिकी विभिन्न पाय रागादिक भाव भये, भयो
है शरीरकी मित्राथ जैसे मल्लो । रागादिक भावनिकी पायके विभिन्न
पुनि, होत कर्मपाय ठसो है पाय कलकी । जैसे ही भ्रमत भयो मानुष
शरीर जोग बौं गो बनें पदा उदाय निज चलकी ॥३६॥

दोहा—रमापति स्तुत गुण जाक जाकी चोमी दास ।

साईं मेरी प्रान है धारें प्रकट प्रकारा ॥३७॥

मैं आत्म अरु पुरगल रूप, मिलनें भयो परस्पर बध ।
सो अस्ताता जाति पयाव, उपज्यो मानुष नाम कहाय ॥३८॥
माता गर्भम भो पयाय, करिके पूरण अग सुभाय ।
माहुर निकमि प्रकट जय भयो, तब पुत्रुम्हको भेडो भयो ॥३९॥
नाम घरयो तिन हर्षित होय, टोहरमज महे सब कोय ।
तेसो यहू मानुष पर्याय, बधत भयो निज काल गमाय ॥४०॥
देरा दुहाइत मादि महान, नगर सवाई जयपुर यान ।
तामैं ताकी रहती धनो, मोरो रहनी ओढ़े बनो ॥४१॥
लिख पर्याय बिपे जो कोय, देखत जाननहारो सोय ।
मैं हूँ जीव द्रव्य गुणभूष, एक अनादि अनन्त अरूप ॥४२॥
कर्म कइयको कारण पाय, रागादिक हो हैं दुखदाय ।
ते मेरे औषाधिक भाव, इनिकों विनरी मैं शिबराय ॥४३॥
बननादिक लिखनादिक प्रिया, वर्णादिक अरु इन्द्रिय दिया ।
ये सब हैं पुरगलका लेल, इनिकें ताहि हमारा मेल ॥४४॥

। इन पर्या परसे जहा पण्डितजीके आध्यात्मिक जीवनकी मांकी का दिग्दर्शन होता है वहाँ यह भी ज्ञात होता है कि उनके लौकिक जीवनका नाम टोहरमल था और पिताका नाम जागीदास था और माताका नाम था रमा देवी। दूसरे श्रोतासे यह भी स्पष्ट है कि आप मण्डेखाल जानिके भूपण थे और आपका गोत्र 'गोदिका' था, जो भोंसा और बड़नात्या नामक गोत्रका ही नामान्तर जान पड़ता है। तथा आपके वंशान साहूकार कहलाते थे—साहूकारी ही आपके जीवन यापनका एक मात्र माधन था—और घर भी सम्पन्न था। इन्हासे कोई आर्थिक कठिनाई नहीं थी।

। आपके गुरुका नाम बशीधरजी था इन्हींसे पण्डितजीने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी, आप अपनी क्षयोपरामकी विशेषताके कारण पदाथ और उसके अथका शीघ्र ही अवधारण कर लेते थे। फलतः कुर्याप बुद्धि होनेसे थोड़े ही समयमें जैन मिद्दातके विवाय व्याकरण, काव्य, छन्द, अलकार, कोष आदि विविध विषयोंमें दक्षता प्राप्त कर ली थी।

* यह पं० बशीधर बर्ही जान पड़ते हैं जिनका उल्लेख ब्रह्मचारी राय मन्जीने अपनी जीवन परिचय पत्रिकामें तीस वषकी अवस्थाके लगभग उदयपुरमें पं० दौलतरामजीक पासमें जयपुर पं० टोहरमलजीसे मिलने आए थे और वे बर्ही नहीं मिले थे सिर्फ पं० बशीधरजी मिले थे, यथा—

‘पीठे कताक दिन रहि पं० टोहरमल जैपुरक साहूकारका पुत्र ताकै विनेय ज्ञान जानि वामु मिलनके अधि जैपुर नगरी आए। सो वहाँ एक बशीधर किंचित् संथमका धारक विनेय व्याकरणादि जैनमतके शास्त्रोंका पाठी सो पचास रुइका पुस्त्य वायां जानमैं व्याकरण, छंद, अलकार, काव्य, धरचा पढ़ै तासु मिले। बीरवाणी वर्ष अकर १।

यहां यह बात भी ध्यानमें रखने लायक है कि पण्डितजीके पूर्वज भी सर्पथ आम्नायके माननेवाले थे, परन्तु पण्डितजीने वस्तुस्थिति और मटारकीय प्रवृत्तियाँका ध्यलोकन कर तेरह पद्यका अनुसरण किया और इनकी शिथिलताको दूर करनेका भी प्रयत्न किया। परन्तु इस इनमें सुधार होना न देखा किन्तु बल्लटा विकृत परिणामन एव वपायकी तीव्रता देखी, तब अपने परिणामोंको समकरि तेरा पद्यकी शुद्ध प्रवृत्तियाँको प्रोत्साहन देते हुए जननाम सच्ची धार्मिक भावना एव स्वाध्यायके प्रचारको बढ़ाया जिमसे जाता जनधर्मके ममको समझने में समय हुई और फलतः अनेक सज्जन और स्त्रियो आध्यात्मिक चर्चाके साथ गोमटसारादि ग्रन्थाँक जानकार बन गये। यह सब इनके और रामलजीके प्रयत्नका ही फल था।

आप विवाहित थे और आपके दो पुत्र थे जिनमें एकका नाम हरिचन्द और दूसरेका नाम गुमानीराम था। हरिचन्दकी अपेक्षा गुमानीराम का शयोपशम विशेष था और यह प्रायः अपने पिताके समान ही प्रतिभासम्पन्न था और इसलिये पिताके अध्ययन तथा तत्त्व चर्चादि कार्योंमें यथायाग्य सहयोग भी देने लगा था।

गुमानीराम स्पष्ट बच्चा* थे और धाताजन उनसे गृह सन्तुष्ट रहते थे। इन्होंने अपने पिताके स्वर्गगमनके दश बारह वर्ष बाद

* तथा तिनके पाठ टीकरमात्रके बड़े पुत्र हरिचन्दकी तिनके छोटे गुमानीरामकी महानुक्तिवान बच्चाके लक्षणकू धार तिनके पास रहस्य किनेक सुनिकर कछु जान पना भया। — विद्वान्तसार टीका प्रशस्ति।

लगभग स० १८३७ में 'गुमान पथ' की स्थापना की थी। गुमान-पथकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य उस समयकी धार्मिक शिथिलता एवं प्रमादको दूर करते हुए धार्मिक स्थानोंमें पवित्रता पूर्वक ८४ आसादनाओं को बचाते हुए धर्मसाधनकी प्रवृत्तिको सुलभ बनाना था उस समय चूकि भट्टारकाका साम्राज्य था, और जनता भोली भाली थी इसीसे उनमें जो अधिक शिथिलता आ गई थी उसे दूर कर शुद्ध मार्गकी प्रवृत्तिके लिये उन्हें 'गुमान पथ' की स्थापना का कार्य करना आवश्यक था और जिसका प्रचार शुद्धाम्नायके रूपमें आजभी मौजूद है। और हमसे उस शैथिल्यादिको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता मिली है जयपुरमें श्रीवान वधीचन्दके मन्दिरमें गुमान पथकी स्थापना का कार्य सम्पन्न हुआ था। उसीमें उनकी स्वहस्त लिखित ग्रन्थोंकी कुछ प्रतिया मोक्षमाग प्रकाशक और गोम्मटसारादि की—मिली है।
अस्तु—

विषय परिचय

सातव अधिहारम जैन मिथ्यादृष्टीका सांगोपांग विवेचन करते हुए एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास और सर्वथा एकान्त व्यवहारावलम्बी जैनाभासका युक्तिपूर्ण कथन किया गया है जिसे पढ़ते ही जैन दृष्टिका वह सत्य स्वरूप सामने आजाता है और उसकी यह

। चुनाचे श्वेताम्बरी मुनि शांति विजयजीने अपनी मानवधर्म संहिता (शान्त सुधानिधि) नामक पुस्तक के पृष्ठ १९७ में लिखते हैं कि— बीस पन्चम से फूटकर सन् १७२५ में ये अलग हुये। जयपुरके तेरापथियोंमें से प० टोहरमलके पुत्र गुमानीरामजीने सन् १८३७ में गुमान पथ निकाला।”

विपरीत कल्पना जो वस्तु स्थितिको अधवा व्यवहार निश्चयनयोकी
 दृष्टिको न समझेनेके कारण हुड धी दूर हो जाती है । इस महत्वपूर्ण
 प्रकरणमे मल्लजीने जैनियोंके आभ्यन्तर मिथ्यात्वके निरसनका बड़
 रोचक और सैद्धान्तिक विवचन किया है और उभयनयाकी सापेक्ष
 दृष्टिको स्पष्ट करते हुए देव शास्त्र और गुणभक्तिकी अन्वया प्रवृत्तिक
 निराकरण किया है और सम्यक्त्वके मन्मुख मिथ्यादृष्टिको स्वरूप
 तथा क्षयोपराम, विशुद्धि, देशता, प्रायोग्य और कर्ण रूप पचलब्धि
 योका निर्देश करते हुए उक्त अविकारको पूरा किया गया है ।

१ ५११

— १ ॥ १ ॥

७ १ १ १ १ १ १ १

प्रस्तावना

यह तो सर्व विदित ही है कि भगवान् कुन्दकुन्द स्वामीके समय-सार आदि उत्तमोत्तम तथा मेहराम ग्रन्थोंमें अध्यात्म तत्त्व प्रतिपादन परक समयसार प्रवचनसार पचास्तिनाय प्रभृति ग्रन्थ राजाका विवेचन इधर कुछ वर्षोंसे परम आध्यात्मिक सन्त पूज्यश्री १०५ क्षुल्लक प० गंगेश प्रसादजी वर्णोनी महाराज एव पूज्यश्री १०५ क्ष० मनोहरलालजी वर्णोजी महाराज एव पूज्यश्री वानजी स्वामी द्वारा विशदतया एव पर्याप्त रूपसे घटे पैमाने पर बड़े ही सुन्दर ढंगसे रोचकता तथा आकर्षकताके साथ होता चला आ रहा है जिससे समाजमें आध्यात्मिकताकी नवीन ज्योतिर्नई रोशनी पर्याप्त रूपसे—काफी तीरपर प्रसारित हो रही है, फैलायी जा रही है। उस नव ज्योतिर्नई रोशनीमें हम लोगोंमें कुछ ऐसे लोग भी रोशान हो रहे हैं जो आध्यात्मिकताकी प्राण प्रतिष्ठा या आधारशिला भूत निश्चयनय तथा व्यवहारनयकी दृष्टिसे भ्रष्ट हो किसी एक तथा निरपेक्षनयके अधीन हो सन्मार्गसे हटकर उन्मार्गका अवलम्बन कर रहे हैं।

उक्त पूज्य प्रवक्ताओं द्वारा जो तत्त्वका विश्लेषणात्मक प्रतिपादन होता है उसमें निश्चय एव व्यवहार दोनों दृष्टियाँ सन्निहित रहती हैं। उनमें स्वाश्रितो निश्चय अर्थात् मुख्य रूपसे विवक्षित कहनेके लिये इष्ट आत्मद्रव्यके अधीन बशको जो जाने वह निश्चयनय है। पराश्रितो व्यवहार अर्थात् मुख्य रूपसे विव

क्षित कहनेके लिये दृष्टपर द्रव्यके अशक्तो निमित्त रूपसे आत्म द्रव्यमें जो आरोपितकर जाने वह व्यवहारनय है।

इनमेसे जो किसी एकको छोड़कर अध्यात्म तत्त्वसे बहिर्मुख हो रहे हैं, - उन महानुभावोंको अध्यात्म तत्त्वके अभिमुख होनेमें दोनों नयदृष्टियोंको गौण मुख्य न्यायसे मध्य दृष्टि (मद्देनजर) रखते हुए तत्त्व जिज्ञासुताके साथ तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इसी लक्ष्यको लेकर निम्न पक्तियाँ लिखी जा रही हैं। आशा ही नहीं प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि आध्यात्मिक रमिक महाशय निम्न पक्तियोंको आद्योपान्त—प्रारम्भसे अन्त तक पढ़कर लब्ध-लाम होंगे।

अध्यात्मतत्त्व मीमांसा

अध्यात्म तत्त्वकी ग्राह्यता उपादेयता तथा उपयोगिता उसकी मीमांसा परीक्षा पर निर्भर है। अतः अध्यात्म तत्त्वकी मीमांसाके सम्बन्धमें ही हम यहाँ कुछ आत्मिक विचार व्यक्त करते हैं। अध्यात्म तत्त्वकी मीमांसाका अर्थ है आत्मासे भिन्न समस्त द्रव्य एवं उनके समस्त गुण पर्यायासे भिन्न केवल आत्मतत्त्वका ही पर्यवेक्षण तथा परिशीलन जिसमें किया जाय।

दूसरे शब्दोंमें एक मात्र सिर्फ 'खालिस' आत्माके ही स्वरूपका निरीक्षण एवं परीक्षण करना अध्यात्म तत्त्व मीमांसा है।

जैसा कि 'भगवान् कुन्द कुन्द स्वामीके' समयमारकी छठवीं गीता की व्याख्या करते हुए भगवान् अमृतचन्द्र स्वामीने कहा है।

एष एवाशेष द्रव्यान्तर भावेभ्यो भिन्नत्वेनो पास्यमानः शुद्ध
इत्यभिलष्यते ।

प्रकारान्तरसे शुद्धताका अर्थ है—समस्त कर्तृ कर्म, करण सम्प्र-
दान अपाप्तान अधिकरण रूप पट्ट कारकोंके समुदायकी विभिन्न
प्रक्रियायोंसे प्रथक एकमात्र निर्मल आत्मानुभवका नामही शुद्ध
अध्यात्म तत्त्व है। जैसाकि उन्ही भगवान् कुन्द कुन्दस्वामीके समय
सारकी ७३वीं गाथाकी व्याख्याके अवसर पर उन्ही भगवान् अमृत
चन्द्र स्वामीने कहा है,

“ममस्त कारक चक्र प्रक्रियोत्तीर्ण निर्मलानुभूति मात्रत्वा-
च्छुद्धः ।”

उक्त प्रकारसे प्रत्येक आत्मा शुद्धही है चाहे वह ससारी हो
या सिद्ध ।

आत्म स्वभावकी दृष्टिसे दोनों प्रकारकी आत्माएँ शुद्धही हैं।
स्वभावतः अर्थात् पारिणामिक भाव रूप जो जीवत्व भाव है
निसमें कर्मकी चतुर्विधि चार प्रकारकी अवस्थाओंमें से किसीभी
अवस्थाकी अपेक्षा न हो अर्थात् जो कर्मके उदय, उपशम, क्षय तथा
श्रयोपशम इन चारोंमें से किसीभी अवस्थाकी अपेक्षा न रखते हुए
केवल सिर्फ एकमात्र आत्मनापेक्ष भावही है और जो चैतन्यमय
है वैसे जीवत्व नामके पारिणामिक भावको ही उद्देश्य करके
अध्यात्मतत्त्वकी मीमांसा की गई है जो उभयत्र दोनों ससारी
एव मुक्त जीवोंमें सामान्यरूपसे उपलब्ध होती है। अन्तर फर्क-केवल

क्षित पहनेके गिये दृष्टपर तृणके अशकी निमित्त रूपसे आत्म द्रव्यमें जो आरोपितकर जाने वह व्यवहारनय है ।

इनमसे जो किसी एकको छोड़कर अध्यात्म तत्त्वसे बहिमुख हो रहे हैं, उन मतानुमावोंको अध्यात्म तत्त्वसे अभिमुख होनेमें दोनों नयदृष्टियोंको गौण मुख्य न्यायसे मध्य दृष्टि (महानजर) रखते हुए तत्त्व जिज्ञासुताके साथ तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिए । इसी लक्ष्यको लेकर निम्न पक्तियां लिखी जा रही हैं । आशा ही नहीं प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि आध्यात्मिक रमिक महाशय-निम्न पक्तियोंको आप्रोपान्त-प्रारम्भसे अन्त तक पढ़कर लाभ-लाभ हूंगे ।

अध्यात्मतत्त्व मीमांसा

अध्यात्म तत्त्वकी प्राकृतता उपादेयता तथा उपयोगिता वसकी मीमांसा-परीक्षा पर निर्भर है । अतः अध्यात्म तत्त्वकी मीमांसाके सम्बन्धमें ही हम-यहाँ कल्प आत्मिक-विचार व्यक्त करते हैं । अध्यात्म तत्त्वकी मीमांसाका अर्थ है आत्मासे भिन्न-समस्त द्रव्य एवं उनके समस्त गुण पर्यायसे भिन्न केवल आत्मतत्त्वका ही पर्यवेक्षण तथा परिशीलन जिमर्म किया जाय ।

उभये शब्दोंमें एक मात्र सिफ ग्यालिस आत्माके ही स्वरूपका निरीक्षण एवं परीक्षण करना अध्यात्म तत्त्व मीमांसा है ।

जैसा कि भगवान् कुन्द-कुन्द स्वामीके समयसारकी छठवीं गाथा की व्याख्या करते हुए भगवान् अमृतचन्द्र स्वामीने कहा है ।

एष एवाशेष द्रव्यात्तर भावेभ्यो मिन्नत्येनो पास्यमानः शुद्ध इत्यमिलप्यते ।

प्रकार-तरसे गुटताका अर्थ है—ममस्त कर्तृ कर्म, करण, सम्प्र-दान अशासन अधिकरण रूप पद कारकाके समुदायकी विभिन्न प्रक्रियार्यासे प्रथक एकमात्र निर्मल आत्मानुभवका नामही शुद्ध अभ्यात्म तत्त्व है । जैसाकि उन्ही भगवान् शुन्द बुन्दस्वामीके समय सारकी ७३वां गाथाकी व्याख्याके अवसर पर उन्ही भगवान् अमृत चन्द्र स्वामीने कहा है,

“ममस्त कारक चक्र प्रक्रियोत्तीर्ण निर्मलानुभूति माप्रत्वा-
च्छुद्धः ।”

वेत्त प्रकारसे प्रत्येक आत्मा शुद्धही है चाहे वह ससारी हो या सिद्ध ।

‘आम स्वभावकी दृष्टिसे दोनों प्रकारकी आत्मा शुद्धही है । स्वभावतः अर्थात् पारिणामिक भाव रूप जो जीवत्व भाव है जिसमें कर्मकी चतुर्विधि-चार प्रकारकी अवस्थाओंमें से किसी भी अवस्थाकी अपेक्षा न हो अर्थात् जो कर्मके उदय, उपशम, क्षय तथा श्रयोपशम इन चारोंमें से किसी भी अवस्थाकी अपेक्षा न रखते हुए केवल निर्मल एकमात्र आत्ममापेक्ष भावही है और जो चैतन्यमय है उसे जीवत्व नामके पारिणामिक भावको ही उद्देश्य करके अध्यात्मनस्वकी मीमांसा की गई है जो स्वभावतः दोनों ससारी एवं मुक्त जीवोंमें सामान्यरूपसे उपलब्ध होती है । अन्तर फरक केवल

विशेषगुणांकी पूर्णता तथा अपूर्णतासे है। अर्थात् जिन्होंने ज्ञान चेतनाके प्रबल बलसे अपने ज्ञातृत्व ज्ञातापन तथा द्रष्टृत्व-द्रष्टापन स्वभावका दृढ निश्चय कर बाह्य एवं आभ्यन्तर चारित्रिके द्वारा अपने आत्माको अन्तरात्मासे परमात्मपदमें प्रतिष्ठित किया है ऐसा परमात्मपदही अध्यात्म तत्त्व द्वारा साध्यरूपसे लक्षित है परन्तु अनादित आत्मा अनात्म भूत जड पुद्गलोसे सम्बद्ध है। अतएव विभाव भावोंसे परिणमित परिणमन करता हुआ चला आरहा है जिसे आत्माआने अपनी आत्मिक ज्ञान शक्तिके द्वारा अनादि सम्बद्ध दोनों द्रव्योंके स्वभावगत पृथक् पृथक् भावोंका ज्ञान प्राप्त किया है उन्होंने ही परसे भिन्न अपने आत्म द्रव्यको पृथक् करनेका सफल प्रयास किया औरवे अपने प्रयासमें पूर्णतया सफल हुए। उनकी उक्त सफलता का नामही सिद्ध अवस्था है जो आत्माके समस्त गुणोंके परिपूर्ण विकास रूप है। इससे भिन्न ससार अवस्थामें अवस्थित प्रत्येक आत्माके समस्तगुण पूर्णरूपेण अविकसित हैं। उनके अविकसित रहनेका एकमात्र कारण आत्माका विभाव परिणमन है। जिसका निमित्त कारण कामण पुद्गलोंका आत्माके साथ एक क्षेत्रावगाह रूप सम्बन्ध है। जो दूध और पानीके समान एकमेक हो रहा है। ऐसी अशुद्धिका दूरकर पूर्ण आत्म शुद्धिका ही लक्ष्यमें रखकर प्रत्येक मुमुक्षु अशुद्धिताके कारणभूत विभाव भावों, एवं उनके बाह्य साधनभूत देह गेह आदि परपदार्थोंको हेय समझकर ही उन्हें त्यागनेका उपक्रम करता है क्योंकि वह निम्न प्रकारसे आत्म-शुद्धि परही लक्ष्य

मे मर्वदा वस्तुत एक हूँ अद्वितीय हूँ; शुद्ध हूँ परमावासे शून्य हूँ, ज्ञान तथा दर्शनरूप हूँ, अमूर्त्तिक हूँ, —स्पर्श रसगन्धवर्णसे रहित हूँ, मेरे स्वरूपसे अथ व द्रव्यका परमाणुभी नहीं है मैं तो 'एकत्रैकालिक टकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव हूँ, जैसाकि भगवान् बुन्द बुन्द स्वामीके नियमसारकी निम्नगाथासे स्पष्टतया प्रकट है—

“ अहमिको खलु सुदोषाण दशोणमयी यो मदारुगी
 गत्रा अत्यि मज्झि किंचिगी अण्ण परमाणु मित्थी ।

औरभी-मेरा आत्मा एक है। नित्य है, अचिन्ताशी है ज्ञान-
 दान लक्षण युक्त है। इससे भिन्न जितनेभी भाव हैं वे सबके सब पर-
 पुद्गलक सयोग सम्बन्धरस उत्पन्न हुए हैं। अतएव परभाव है। वाह-
 भाव है मेरे स्वभाव भाव नहीं है। किन्तु विभाय भाव है। औपा-
 धिक भाव है। जैसाकि उन्हीं भगवान् बुन्दबुन्द स्वामीकी निम्न गाथा-
 से स्पष्ट है।

“ एगा मे सासदो आदा णाण दसण लक्खणो
 शैमा मे बाहिरा भावा सत्ते सज्जोग लक्खणा ।”

“और भी शुद्ध द्रव्यके निरूपणमे सलग्न बुद्धिवाला तत्त्वज्ञानी, अतरात्म-
 जैव आत्म स्वरूपका अवलोकन करता है तब यही देवता है कि-
 किसी भी द्रव्यमें अन्य-दूसरे द्रव्यका परमाणु प्रमाने अश भी नहीं
 है। ज्ञान चक्षु से जो कुछ भा अवलोकित है यह एक मात्र अद्वितीय
 आत्म द्रव्य ही है। अन्य कुछ भी नहीं है। और न था। और
 न होगा।

सयोगनभाय जो हेयं त्याज्य कोटिमै स्वीकृत हुए हैं स्वैत हा अभाव को प्राप्त हो जायगे और फिर आत्माकी शुद्धिमें अन्त काल तक अनुपलब्ध ही रहेंगे।

अत आत्मिक शुद्धिकी परिपूर्णताके हेतु एव परद्रव्यके मवधा मूलोच्छेदके लिये बाह्य एव आभ्यन्तर दोनों प्रकारके चारित्रिका धारण-पालन और आचरण नितान्त आवश्यक निहायत जरूरी है। बिना चारित्रिके परद्रव्यके सयोगका पूण वियोग अमम्भव ही है। केवल आत्मिक शुद्धिकी श्रद्धा प्रतीतिमात्र आत्माको अनादि कालसे सम्यक् परद्रव्यसे उन्मुक्त करनेमें ममथ नहीं हो सकती, किन्तु वह अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकारके परिपूर्ण चारित्रिकी अपेक्षा रखती है तभी तो वह श्रद्धा सत् श्रद्धा है अन्यथा नहीं। अत श्रद्धावान मुदृष्टिको चारित्रिकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये।

इस प्रकारसे स्वभावतः शुद्ध-स्थूल-निर्मल निरञ्जन यह आत्म परद्रव्यके सयोगसे ही नाना प्रकारके चतुर्गतिने दुर्गोंका पात्र बन रहा है। पञ्च परावर्तन रूप सप्तारमें ससरण कर रहा है अतएव उक्त प्रकारके सप्तारका मूल पर द्रव्यका सयोग है उस सयोगसे वियोग प्राप्त करनेके हेतु अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि जो बाह्य तरवसे सर्वथा भिन्न आत्म तत्त्वमें दृष्टिकी स्थिरकर रहा है वह अचिरत सम्यग्दृष्टि विरत बनने अर्थात् चारित्र धारण करनेकी ओर अभिमुख हो रहा है। ऐसी स्थितिमें उसे अनशन आदि बाह्य तथा प्रायश्चित आदि आभ्यतर तपोमें प्रवृत्ति रूप चारित्र धारण करनेकी नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती है। बिना तपश्चरणके आत्माकी अनादिकालिक अशुद्धिताका अभाव

नहीं हो सकता, और बिना उसके शुद्धताका प्राप्त होता नितान्त दुःसाध्य ही नहीं प्रत्युत असम्भवा है ।

चारित्र्य धारण करनेकी आवश्यकता

अविरत सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी होते हुए भी देश चारित्री एवं सकल चारित्री बननेके लिये उद्यमशील रहता है । क्योंकि आचार्योंने मोक्षमार्गीता रत्नत्रयकी परिपूर्णतामें स्वीकार की है । हा, यह ठीक है कि सम्यग्दर्शन एवं सम्यगज्ञानकी परिपूर्णता केवली भगवानके तेरहवेंगुण स्थानमें ही सम्पन्न हो जाती है परन्तु चारित्र्यकी अपूर्णता होनेसे वह मोक्षका अलाभ ही है । उसका लाभ तो यथारथात् चारित्र्ये पूर्ण होते ही होता है । अतः सम्यग्दृष्टिकी चारित्र्यका आराधन मोक्ष प्राप्ति के हेतु अति ही अनिवार्य है ।

चारित्र्यके भेद और स्वरूप

वह चारित्र्य सकल चारित्र्य एवं विकल चारित्र्यके भेदसे आचार्या द्वारा द्विविध रूपसे वर्णित है । अतः चारित्र्यकी ओरसे उपेक्षाका होना सम्यग्दृष्टिके नितान्त असम्भव है । वह सम्यग्दृष्टि चारित्र्यका निरोधक या विरोधक होही नहीं सकता । क्योंकि सम्यग्दृष्टि स्वच्छन्द अनर्गल प्रवृत्ति कर ही नहीं सकता । इसी यातकी पुष्टि मोक्षमार्ग प्रकाशकके सातव अधिकारमें अविकल रूपसे की गई है । निश्चय चारित्र्य आत्म-स्वरूपकी स्थिरतारूप है जो सर्वथा मोहके एवं योगके अभाव होनेपर ही प्रादुर्भूत होता है । और समस्त अशुभ क्रियाओं अर्थात् हिंसा मऽ चोरी, कुशील एवं परिग्रह रूप समस्त पाप

(२) द्वितीय आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री १०५ भू०। पण्डित मनोहर-
लालजी वर्णी जी महाराज हैं जो जैन समाज में छोटे वर्णीजी के नाम
से विख्यात हैं। आप तो यथानाम तथा गुण हैं आपने अपने वर्तमान
स्वल्प जीवनम जो अनल्प तत्त्वज्ञानका उपार्जन किया है वह आपकी
अप्रतिम प्रतिभा का परिचायक है। आपके अगाध आध्यात्मिक
तत्त्वज्ञान ने तो जैन समाज में अद्वितीय एवं अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न
कर दी है। आपने अपने ज्ञान भण्डार को जन साधारण में विविध
ग्रन्थोंकी रचना द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित किया है। अतएव आप
द्वितीय आध्यात्मिक सन्त हैं। हम आपके सुदीर्घजीवी होने की हार्दिक
कामना करते हैं। तथा श्रीमज्जिनेन्द्र देवसे एतदर्थ बहुश प्रार्थना
करते हैं।

(३) तृतीय आध्यात्मिक सन्त पूज्यश्री कानजी स्वामी ड।
जिन्होंने प्रातः स्मरणीय पूज्यपादनिर्मल्य आचार्यव्य भगवान् कुन्द
कुन्द स्वामीके समयसार, प्रवचनसार, पचास्तिकाय, नियमसार आदि
महानतम ग्रन्थोंका अध्ययन, मनन एवं चिन्तन कर उनके सत्यार्थ
रहस्य को प्रकट कर (खोलकर) जनताके समक्ष प्रस्तुत किया है।

। आप तो वर्तमान में विशेष रूपसे गुजरात-काठियावाड़ प्रान्तके
सर्वोपरि दिग्ग्वर जैन धर्मानुयायी परम आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान सन्त
हैं। आपके द्वारा जो आध्यात्मिक तत्त्वज्ञानकी सरिता अविच्छिन्न रूप
से प्रवाहित हो रही है वह अनुपम, अतुल्य एवं अवगनाय तथा अकथ
नीय है। आपकी वाणीमें ओज है, अलौकिक माधुर्य है। एवं है औदार्य
एवं गाम्भीर्य। आपने बहुधा भगवान् कुन्द कुन्द स्वामी के पूर्वाक

समस्त आध्यात्मिक ग्रन्थों पर सुबोध एवं सरल तथा भावपूर्ण तत्त्व तत्त्वस्पर्शी मार्मिक विवेचनात्मक टीकाय की है। आपकी ज्यास्व्यान पद्धति असदृश पैरोड है तत्त्व को श्रोताओके मानस पटल पर अङ्कित कर देना आप ही जैसे असाधारण यत्ना की षचन-रचना चातुरी पर निर्भर है। आजका सोनगढ़ परम आध्यात्मिकता एवं तत्त्वज्ञानका सुगढ हो रहा है। जैन समाज ही नहीं परन्तु जैनैतर समाज भी आपकी आध्यात्मिक तात्त्विक विवेचनाओंसे पूर्णतया प्रभावित है। आपका तात्त्विक रहस्य बहुभाषन मत्स्यता एवं तथ्यता से ओतप्रोत है। आपके सान्निध्यसे गुजरात प्रांत में दिगम्बर धर्म का जो प्रचार एवं प्रसार हो रहा है वह इस बीसवीं सदीका एक अद्वितीय अनोखा एवं असाधारण कार्य है। आपकी अघाघ अक्षुण्ण अलौकिक एवं अनुपम क्षायोपशमिक ज्ञानकी प्रगल्भ प्रतिभा ने महत्तम श्रेष्ठतम एवं उत्तमोत्तम शिक्षितों के चेत'पट [पर आध्यात्मिक तत्त्वज्ञानकी एमी अनिर्वचनीय छाया (छाप) स्थापित कर दी है जो सदियों तक अविच्छिन्न सतति के रूपमें संचालित होती रहेगी। अतएव हम आपके सुभाह्य समुपादेय आध्यात्मिक तत्त्वज्ञानकी सुराराध्यता एवं समुपास्यता की आन्तरिक मद्भावना पूर्णश्रद्धा से नतमस्तक होते हुए आपके चिरायु होने की श्री मञ्जिनेन्द्र प्रभु से भावना भाते हैं।



कर उसे अचला बनाया है। हम उन चित्रवाणीके उपासकोंकी हृदयसे प्रशंसा करते हैं और अध्यात्म प्रेमियासे पुन पुन प्रार्थना करते हैं कि वृद्ध अधिकारके इस वृथक प्रकाशनसे अधिकसे अधिक लाभ उठाकर मिथ्यामार्गसे सन्मार्गमें आकर अपना ग्व जगतका कल्याण कर।

१,



अन्तिम प्रार्थना

यद्यपि इस परम हितकारी अविकारके पूणतया शुद्धरूपसे प्रकाशित करनेके हेतु हमने प्रकृत सशोधनमे पूर्ण मावधानीसे काम लिया है तथापि क्वि दोषसे यत्र तत्र अशुद्धियाँका रह जाना सम्भव है। अतः स्वाध्याय प्रेमी सचन शुद्ध करके लाभ उठाव और अग्रिम सुस्करणमें उन अशुद्धियोंको दूर करनेके हेतु हम आदेशित कर पेसी हमारी अन्तिम प्रार्थना है।

आध्यात्मिक मन्नोंका विनम्र सेवक

कमल कुमार जैन गोइल्ल

शास्त्री न्याय वाकरण काव्यनाथ साहित्यधर्मशास्त्रज्ञ

C/o दानवीर, रायबहादुर, जैन रज, सेठ गजराज गगवाल :

नं० ४, धियेटर रोड, कलकत्ता ।

आकार विन्दु मयुक्त नित्यध्यायन्ति योगिनः

कामद मोक्षद चैव आकाराय नमानमः

अविरल शब्द धनौष, प्रशालित मकरल भूतल कलङ्का ।

११ मुनि मिरुपासित तीर्था, सरस्वती हरतु नोदुग्धितम् ॥

अज्ञान तिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जन शलाकया ।

१ धनुस्समीलित येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

श्रीपरम गुरवेनम श्री परम्पराचार्यगुरवेनम सकल कलुष
विच्छेदक श्रेयसात्मपरिवर्धक धर्ममन्वधक मय जीयमन प्रति-
बोधक पुण्यप्रकाशक पापप्रणाशकमिदं शास्त्र मोक्षमार्ग
प्रकाशकी वास्तविकदृष्टि नाम धेयमस्य मूलग्रन्थ कच्चार
श्री सर्वज्ञ देवास्तदुत्तरप्रथकर्तारः श्रीगणधर देवा प्रतिगण धर
देवाश्च तेषावचनानुसारतामासाद्य श्रीमतोभगवत कुन्द
कुन्दाचार्यस्य आम्नाये श्रीमता आचार्यकल्पन विद्वद्वरण पण्डित
टाडरमल्लेन निरचितमिदंशास्त्रम् ।

मंगल भगवान वीरो मंगल गौतमागर्णो

मंगल कुन्दकुन्दायो जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्

मंगलमय मंगल करण वातराग विद्वान्

नर्मा ताहि जात मय अहन्तादिमहान्

करि मंगल करिहो महाग्रन्थ करनका काज

जात मिल ममाज मय पापे निजपादराज

मा श्रानार सावधानतया शृण्वन्तु

ॐ नम सिद्धेभ्य

आचार्यकल्प प० टोडरमलजीकृत

मोक्षमार्ग प्रकाशक

सातवां अधिकार

[जैनमिथ्यादृष्टिका विमर्शन]

दोहा ।

इस भवतरुको मूल इरु, जानहु मिथ्याभाव ।

ताको करि निर्मूल अउ, करिए मोक्ष उपाव ॥१॥

अर्थ—जे जीव जैनी हैं, जिन आज्ञाकाँ मानें हैं, अर तिनके भी मिथ्यात्व रहै है ताका वर्णन कीजिए है जात इस मिथ्या त्वरुकीका अश भी बुरा है, तातें सूक्ष्ममिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है । तहाँ जिन आगमविषे निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है । तिनविषे यथार्थका नाम निश्चय है । उपचारका नाम व्यवहार है । सो इनका स्वरूपकाँ न जानते अन्यथा प्रवृत्त हैं, सोई कहिए है

[एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास]

कोई जीव निश्चयकी न जानते निश्चयानामके श्रद्धानी

होए आपको मोक्षमार्गी माने हैं। अपने आत्माकी सिद्धसमान अनुभव हैं। सो आप प्रत्यक्षसत्तारी हैं। भ्रमकरि आपको सिद्ध माने सोई मिध्यादृष्टी शास्त्रनिर्विषे जो सिद्धसमान आत्माको फटा है, सो द्रव्यदृष्टिवरि फटा है, पर्याय अपेक्षा समान नाहीं हैं। जैसे राजा अर रक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, राजापना रकपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। तैम सिद्ध अर सत्तारी जीवन्पनेकी अपेक्षा समान हैं, सिद्धपना सत्तारीपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। यहू जैसे सिद्ध शुद्ध हैं, तैम ही आत्माको शुद्ध माने। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इम पर्यायअपेक्षा समानता मानिए, सो यहू मिध्यादृष्टि है। बहुति आपको केवलज्ञानादिका सद्भाव माने, सो आपको तो क्षुपोपशमरूप मतिध्रुतादि ज्ञानका सद्भाव है। क्षापिकभाव तो कर्मका क्षय भए होइ है। यह भ्रमते कर्मका क्षय भए बिना ही क्षापिकभाव माने। सो यहू मिध्यादृष्टी है। शास्त्र-विषे सबजीवनिका केवलज्ञानस्वभाव कहया है, सो शक्तिअपेक्षा कहया है। सर्वजीवनिविषे केवलज्ञानादिरूप होनेकी शक्ति है। वर्तमान व्यक्तता तो व्यक्त भए ही कहिए।

[केवलज्ञान निषेध]

कोऊ ऐसा माने है, आत्माके प्रदशनिर्विषे तो केवलज्ञान ही है, उपरि जातरणत प्रगट न हो है। सो यहू भ्रम है। जो

केवलज्ञान होइ तौ वज्रपटलादि आडे होतें भी वस्तुकों जानें ।
 कर्मकों आड आए कर्म अटकै । तातें कर्मके निमित्ततें केवल-
 ज्ञानका अभाव ही है । जो याका सर्वदा सद्भाव रहै है, तौ
 याकों पारिणामिकभाव कहते, सो यहू तौ क्षायिकभाव है ।
 जो सर्वभेद जायै गमित ऐमा चेतन्यभाव सो पारिणामिक
 भाव है । याकी अनेकअवस्था मतिगानादिरूप वा केवलज्ञानादि-
 रूप है, सो ए पारिणामिकभाव नहीं । तातें केवलज्ञानका सर्वदा
 सद्भाव न मानना । बहुरि जो शास्त्रनिर्निषेण सूर्यका दृष्टान्त
 दिया है, ताका इतना ही भाव लेना, जैसे मेघपटल होत सूर्य-
 प्रकाश प्रगट न हो है, तैसे कर्मउदय होतें केवलज्ञान न हो है
 बहुरि ऐसा भाव न लेना, जैसे सूर्यनिषेण प्रकाश रहै है, तैसे
 आत्मविषेण केवलज्ञान रहै है । जातें दृष्टात सर्वप्रकार मिलै नाहीं ।
 जैसे पुद्गलनिषेण वर्णगुण है, ताको हरित पीतादि अवस्था है ।
 सो वर्तमानविषेण कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभाव ही
 है । तैसे आत्मविषेण चेतन्यगुण है, ताकी मतिज्ञानादिरूप अवस्था
 है । सा वर्तमान कोई अवस्था होत अन्य अवस्थाका अभाव है ।

बहुरिकोऊकहै, कि आररणनाम तौ वस्तुके आच्छादनेका
 है, केवलज्ञानका सद्भाव नहीं है, तौ केवलज्ञानावरण काहेकों
 कहौ हो ?

ताका उत्तर—यहां शक्ति है ताकों व्यक्त न होने दे, इस
 अपेक्षा आररण कहा है । जैसे देशचरित्रका अभाव होत शक्ति

घातनेकी अपेक्षा अप्रत्याख्यानापरण कषाय कथा, तैस जानना ।
 बहुरि अँस जानाँ—वस्तुविषे जो परनिमित्ततँ भाव होय, ताका
 नाम औपाधिकभाव है। अर परनिमित्तदिना जो भाव होय, सो
 ताकानाम स्वभावभाव है । सो जँस जलके अग्निका निमित्तताते
 उष्णपनी भयो, तहाँ शीतलपनाका अभाव ही है। परन्तु अग्निका
 निमित्तमिटें शीतलताही होय जाय ताँस सदाकाल जलका स्वभाव
 शीतल कहिए। जातँ ऐसी शक्तिसदा पाइए है बहुरि व्यक्त भए स्वभाव
 व्यक्त भया कहिए । कदाचित व्यक्तरूप हो है । तँस आत्मके
 कर्मका निमित्त होत अन्यरूप भयो, तहा केवलज्ञानका अभाव
 ही हैं । परन्तु कर्मका निमित्त मिट मर्यदा केवलज्ञान होय
 जाय । ताँस सदाकाल आत्माका स्वभाव केवलज्ञान कहिए है ।
 जातँ ऐसी शक्ति सदा पाइए है । व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त
 भया रहिए । बहुरि जँस शीतलस्वभावकरि उष्ण जलको
 शीतल मानि पानादि करै, तौ दाहना ही होय । तँस केवल
 ज्ञानस्वभावकरि अशुद्धआत्माको केवलज्ञानी मानि अनुभव, तौ
 दुखी ही होय । अँस जे केवलज्ञानादिकरूप आत्माको अनुभव
 हैं, ते मिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि रागादिक भाव आपके प्रत्यक्ष होत
 भ्रमकरि आत्माका रागादिरहित मानँ, सो पूछिए हैं ए रागा-
 दिक तौ होते देखिए हैं, ए किस द्रव्यक अस्तित्वविषे है । जो
 शरीर वा कर्मरूपपुद्गलक अस्तित्वविषे होय तौ ए भाव अचतन
 वा मूर्च्छिक कहो । सो तौ ए रागादिक प्रत्यक्ष चतनता लिए

अमूर्त्तिकमात्र भासै हैं । ताँ ए मात्र आत्माहीके हैं । सोई समयमारके कलशविषे कह्या है—

[कथंचित् आत्मा ही रागादिकका करता है]

कार्यत्वादकृत न कर्म न च तज्जीवप्रकृतयोर्द्वयो-
रज्ञाया प्रकृते स्वकार्यनुभवाभावान्न चेय कृति ।
नैकस्या प्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवस्य कर्त्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुग ज्ञाता नवै पुद्गल ॥१॥

[सर्ववि० ११]

याका अर्थ यह—रागादिरूप भावकर्म है, सो काहूकरि
फिया नाही है । जाँत यह कार्यभूत है । बहुरि जीव अर
कर्मप्रकृति इनि दौऊनिका भी कर्त्तव्य नाही । जाँत अँसे
होयतौ अचेतनकर्म प्रकृतिके मी तिस भावकर्मका फल सुखदुःख
ताका भोगना होइ, सो असमय है । बहुरि एकली कर्म
प्रकृतिरु भी यह कर्त्तव्य नाहीं । जाँत वारुँ अचेतनपनो
प्रगट है । ताँत इम रागादिकका जीव ही कर्त्ता है । अर सो
रागादिक जीवहीका कर्म है । जाँत मात्रकर्म तौ चेतनाका
अनुसारी है, चेतना बिना न होइ । अर पुद्गल ज्ञाता है
नाहीं । अँसे रागादिकमात्र जीवके अस्तित्वविषे हैं । जो रागा
दिक भावनिका निमित्त कर्महीको मानि आपकाँ रागादिकका

अकत्ता माने हैं, सो फत्ता ती आप अर आपकाँ निरघमी होय प्रमादी रहना, ताँत कर्महीका दोष ठहराँ है । ना यहू दुः-
दायक मम है । ताइ समयसारका कलशाविष बहा है
रागजन्मनि निमित्तता परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते ।
उत्तरन्ति नहि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्घबुद्धय ॥
[सर्व वि० २८]

ज जीव रागादिकको उत्पत्तिविषे परद्रव्यहीकाँ निमित्त-
पनी माने हैं, ते जीव भी शुद्धज्ञानकरि रहित हैं अधबुद्धि
जिनकी ऐसे होते सँत मोहनदीकाँ नाही उतरै हैं । बहुरि
समयसारका 'सर्वविशुद्धि अधिकार' विषे जो, आत्माकाँ
अकर्त्ता माने है, अर यहू कहे है--कर्म ही जगाँ सुवाँ है,
परघात कर्मते हिंसा है, वेद कर्मते अग्रह है, ताँत कर्म ही
कर्त्ता है, तिस जेनीकाँ सांख्यमती बहा है । जँस सांख्यमती
आत्माकाँ शुद्ध मानि स्वच्छन्द हो है, तँस ही यहू मया ।
बहुरि इस भ्रद्धानते यहू दोष मया, जो रागादिक अपने न
जाने, आपकाँ अकत्ता मान्या, तब रागादिक होनेका मय रक्षा
नाही, वा रागादिक भेटनेका उपाय करना रह्या नाहीं, तब
स्वच्छ द होय छोटे कर्म बांधि अनतमसारविषे रलै है ।

[कथञ्चित् पुद्गलही रागादिकका करता है]

यदां प्रश्न जो समयसारविषे ही ऐसा कह्या है

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्ना भावा सर्व एवास्य पु स ० ।

याका अर्थ—वर्णादिक वा रागादिक भाव है, ते सर्व ही हम आत्माके भिन्न है। वहुनि तहां ही रागादिकको पुद्गलमय कहे हैं। वहुनि अन्य शास्त्रनिर्णय भी रागादिकते भिन्न आत्माको कहया है, सो यहु कर्म है ?

ताका उत्तर रागादिकभाव परद्रव्यके निमित्तते औषधिकभाव हो हैं। अर यहु जीव तिनिको स्वभाव जानै हैं। जाको स्वभाव जान, ताको नुरा कर्म मानै, वा ताके नाशका उद्यम काहेको करै। सो यहु श्रद्धान भी विपरीत है। ताके छुडावनेको स्वभावकी अपेक्षा रागादिकको भिन्न कहे हैं। अर निमित्तकी मुरपताकरि पुद्गलमय कहे हैं। जैसे वैद्य रोग मेट्या चाहै है। जो शीतका आधिक्य देखै, तो उष्ण औषधि बतारै अर आतापका आधिक्य देखै, तो शीतल औषधि बतारै। तैसे श्री गुरु रागादिक छुडाया चाहै है। जो रागादिक परका भानि स्वच्छन्द होय, निरुद्यमी होय ताको उपादानका रणकी मुख्यताकरि रागादिक आत्माका है ऐसा श्रद्धान कराया।

० वर्णाद्या राग मोहादयो वा भिन्ना भावा' सब एवास्य पु स
तेनैवान्तस्त्वत् पश्यन्मीना न्था स्युदष्ट मेक पर स्यात् ॥५॥

—जीवाजीवा ॥५॥

बहुरि जो रागादिक आपका स्वभाव मानि तिनको नाशका उद्यम नाहीं करै है, ताको निमित्तकारणकी मुरपताकरि रागादिक परमार है, ऐसा श्रद्धान कराया है । ठोऊ विपरीत श्रद्धान नै रहित भए मत्यश्रद्धान होय, तब ऐसा मानै ए रागादिक भाव आत्माका स्वभाव तो नाहीं है कर्मके निमित्तत आत्माके अस्तित्वविषे विभावपर्याय निपजै है । निमित्त मिटे इनका नाश होतै स्वभाव भाव रहि जाय है । तातै इनके नाशका उद्यम करना ।

[अतरग बाह्य निमित्त मिलने मिलाने पर ही कार्यकी सिद्धि होती है ।]

यहां प्रश्न—जो कर्मका निमित्तत ए हो हैं, तो कर्मका उद्यम रहे तावत् विभाव दूर कैसे होय ? तातै याका उद्यम करना तो निरर्थक है ।

ताका उत्तर एक धार्य होनेविषे अनेक कारण चाहिए हैं । तिनविषे जे कारण बुद्धिपूर्वक होय, तिनको तो उद्यम करि मिलान अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलै तब कार्यसिद्धि होय । जैसे पुत्र होनेका कारण बुद्धिपूर्वक तो विवाहादिक करना है, अर अबुद्धि पूर्वक भवितव्य है । तहां पुत्रका अर्थी विवाहादिकका तो उद्यम करै, अर भवितव्य स्वयमेव होय, तब पुत्र होय । तैम विभाव दूर करनेके कारण बुद्धि पूर्वक तो तत्त्वविचारादिक

हैं अर अचुद्धिपूर्वक मोहकर्मका उपशमादिक हैं। सो ताका अर्थो तत्त्वविचारादिकका तौ उद्यम करै, अर मोहकर्मका उपशमादिक स्वयमेव होय, तब रागादिक दूरि होय।

यहां ऐसा कहै हैं कि—जैमें विवाहादिक भी भवितव्य आधीन हैं, तैस तत्त्वविचारादिक भी कर्मका क्षयोपशमादिककै आधीन हैं, तातें उद्यम करना निरर्थक है।

ताका उत्तर—ज्ञानावरणका तौ क्षयोपशम तत्त्वविचारादिक करने योग्य तेरै भया है। याही तें उपयोगकौ यहां लगावनेका उद्यम कराइए हैं। असही जीवनिक् क्षयोपशम नाहीं है, तौ उनकौ काहेकौ उपदेश दीजिए हैं।

बहुरि वह कहै है—होनहार होय, तौ तहा उपयोग लागे, बिना होनहार कर्म लागे ?

ताका उत्तर—जो ऐसा श्रद्धान है, तौ सर्वत्र कोई ही कार्य का उद्यम मात करै। तू खान पान व्यापारादिकका तौ उद्यम करै, अर यहां होनहार बतावै। सो जानिए है, तेरा अनुराग यहां नाहीं। मानादिककरि ऐसी झूठी बातें बनावै है। या प्रकार जे रागादिकहोतें तिनिकरि रहित आत्माकौ मानै हैं, ते मिथ्या-दृष्टी जानने।

[चन्धका सहभाष]

बहुरि कर्म नोकर्मका मरथ होत आत्माकौ निर्बंध मानै, सो

प्रत्यक्ष इतिका बधन देखिए है । ज्ञानावरणादिकर्त ज्ञानादिकका घात देखिए है । शरीरकरि ताकै अनुसारि अवस्था होती देखिए है । बधन कैम नाहीं । जो बधन न होय, तो मोक्षमार्गी इनके नाशका उद्यम काहेको करै ।

यहां कोऊ कहै शास्त्रनिर्विष आत्माको कर्म नो कर्मत भिन्न अवद्ध स्पृष्ट कैसे कह्या है ?

ताका उत्तर—सबध अनेक प्रकार हैं । तहां तादात्म्यमबध अपेक्षा आत्माको कर्म नो कर्मत भिन्न कह्या है । तहां द्रव्य पलटकरि एक नाहीं होय जाय है अर इस ही अपेक्षा अवद्धस्पृष्ट कह्या है । बहुति निमित्तनैमित्तिकसबध अपेक्षा बधन है ही । उनके निमित्तत आत्मा अनेक अरस्था धरै ही है । तातें सर्वथा निर्वध आपनै मानना मिथ्या दृष्टि है ।

यहां कोऊ कहै—इमका तो बध मुक्तिरा विकल्प करना नाहीं, जातें शास्त्रनिर्वि ऐसा कह्या है—

“जो बधउ मुक्क मुणइ, सो बधइ णिभतु ।”

याका अर्थ जो जीव बध्या अर मुक्त भया मानै है, सो निःसदेह बध है ताको कहिए है—

जे जीव केवल पर्यायदृष्टि होय, बधमुक्त अरस्थाहीको मानै हैं, द्रव्य स्वभावका ग्रहण नाहीं करै हैं, तिनको ऐसा उपदेश दिया है, जो द्रव्यस्वभावको न जानता जीव बध्या मुक्त भया

मानै, सो बंध है । बहुरि जो सर्वथा ही उधमृक्ति न होय, ती सो जीव बधै है, ऐमा काहको कहै । अर बधके नाशका मुक्त होनेका उद्यम काहेका करिण है । काहको आत्मानुभव करिये है । तातै द्रव्यदृष्टि करि एकदशा है । पर्यायदृष्टिकरि अनेक अवस्था हो है, ऐमा मानना योग्य है । ऐसै ही अनेक प्रकारकरि केवल निश्चयनयका अभिप्रायतै विरुद्ध श्रद्धानादिक करै है । जिन-वानीविषै ती नाना नयअपेक्षा कही कॅमा कही कैसा निरूपण किया है । यह अपने अभिप्रायतै निश्चयनयकी मुख्यताकरि जो कथन किया होय, ताही कोग्रहिकरि मिथ्यादृष्टिमें धारै है । बहुरि जिनवानीविषै ती सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रकी एकता भए मोक्षमार्ग कक्षा है । सो याकै सम्यग्दर्शन ज्ञानविषै सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान वा जानना भया चाहिए । सो तिनका विचार नाहीं । अर चारित्रविषै रागादिक दूर किया चाहिए, ताका उद्यम नाहीं । एक अपने आत्माको शुद्ध अनुभवना इसहीको मोक्षमार्ग जानि सतुष्ट भया है । ताका अभ्यास करनेको अतरङ्गनिप ऐसा चित्त-वन किया चाहै है मैं सिद्धसमान हों, केवलज्ञानादिसहित हों, द्रव्यकर्म नोकर्म रहित हों, परमानदमय हों, जन्ममरणादि दु रा भेरे नाहों, इत्यादि चित्तवन करै है । सो यहाँ पूछिए हे —यहु चित्तवन जो द्रव्यदृष्टिकरि करो हो, ती द्रव्य ती शुद्ध अशुद्ध सर्वपर्यायनिका समुदाय है । तुम शुद्ध ही अनुभव काहेको करी हो । अर पर्यायदृष्टिकरि करो हो, ती तुम्हारे ती वर्तमान्

अशुद्धपर्याय है। तुम आपको शुद्ध कैसे मानो हो ? बहुतों जो शक्तिअपेक्षा शुद्ध मानो हो, तो मैं ऐसा होने योग्य हो ऐसा मानो। ऐसे काहको मानो हो। तब आपको शुद्धरूप चित्त-वन करना भ्रम है। काहेतु तुम आपको मित्रसमान मान्या, तो यह समार अवस्था कौनके है। अर तुम्हारे केवलघानादिक है, तो ये मतिज्ञानादिक कौनके है। अर द्रव्यकर्म नो कर्मरहित हो, तो ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नहीं ? परमानन्दमय हो, तो अब कर्त्तव्य कहा रखा ? जन्ममरणादि द्वारा ही नहीं, तो दुरी कर्म होत हो ? तब अय अवस्थाविषे अयअवस्था मानना भ्रम है।

[द्रव्य दृष्टिसे शुद्धताका वर्णन]

यहां कोऊ कहै शास्त्रविषे शुद्ध चित्तवन करनेका उपदेश कर्म दिया है।

ताका उत्तर - एक तो द्रव्यअपेक्षा शुद्धपना है, एक पयाय-अपेक्षा शुद्धपना है। तहां द्रव्यअपेक्षा तो परद्रव्यने मिन्नपनी वा अपने भावनिर्त अमिन्नपनी ताका नाम शुद्धपना है। अर पयाय अपेक्षा औपाधिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। सो शुद्धचित्तवनविषे द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है। साई ममयसारव्याख्याविषे कहा है

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपा
स्यमान शुद्ध इत्यभिलष्यते ।

[गाथा ० ६]

याका अथ जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नहीं है । सो यह
ही समस्त परद्रव्यनिके भावनिते भिन्नपनेकरि सेवा हुआ शुद्ध
ऐसा कहिए है । बहुरि तहां ही ऐसा कथा है ।

समस्तकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूति-
मात्रत्वाच्छुद्ध ।

[गाथा ७३]

याका अर्थ - समस्त ही कृत्ता कर्म आदि कारकनिका
समूहकी प्रक्रियात पारगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अमेद-
ज्ञान तन्मात्र है, तात शुद्ध है । तातें ऐसै शुद्ध शब्दका अर्थ
जानना । बहुरि ऐसै ही केवलशब्दका अर्थ जानना । जो पर
भावतें भिन्न निकैरल आप ही ताका नाम कैरल है । ऐसै ही
अन्य यथार्थ अर्थ अग्रधारना । पर्याय अपक्षा शुद्धपनों मानै,
वा केवली आपकौ मानै महाविपरीति होय । तातें आपकौ
द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना । द्रव्यकरि सामान्यस्वरूप अवलोकना,
पर्यायकरि विशेष अग्रधारना । ऐसै ही चितवन रिण सम्यग्दृष्टी

अशुद्धपर्याय है। तुम आपकी शुद्ध कैसे मानी हो ? बहुरि जो शक्तिअपेक्षा शुद्ध मानो हो, तो मैं ऐसा होने योग्य ही ऐसा माना। ऐसे काहेको मानी हों। तार्त आपकी शुद्धरूप चित्तवन करना भ्रम है। काहेतें तुम आपकी सिद्धसमान मान्या, तो यह ससार अवस्था कौनके है। अर तुम्हारे केवलज्ञानादिक हैं, तो ये मतिज्ञानादिक कौनके है। अर द्रव्यकर्म नोकर्मरहित हो, तो ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नहीं ? परमानन्दमय हो, तो अब कर्त्तव्य कहा रखा ? जन्ममरणादि दुःख ही नहीं, तो दुखी कैसे होत हो ? तार्तें अन्य अवस्थाविष अन्यअवस्था मानना भ्रम है।

[द्रव्य दृष्टिसे शुद्धताका वर्णन]

यहा कोऊ कहै शास्त्रविषै शुद्ध चित्तवन करनेका उपदेश कर्म दिया है।

ताका उत्तर एक तो द्रव्यअपेक्षा शुद्धपना है, एक पयाय-अपेक्षा शुद्धपना है। तदा द्रव्यअपेक्षा तो परद्रव्यत भिन्नपनी वा अपने भासनित्त अभिन्नपनी तारु नाम शुद्धपना है। अर पयाय अपेक्षा औपाधिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। सो शुद्धचित्तवनविषै द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है। सोई समयसारन्यारयाविषै कथा है

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपा-
स्यमान शुद्ध इत्यभिलष्यते ।

[गायत्री • ६]

याका अर्थ - जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नहीं है । सो यह
ही समस्त परद्रव्यनिके भारनिते भिन्नपनेकरि सेपा हुआ शुद्ध
ऐसा कहिए है । बहुरि तहां ही ऐसा कहा है ।

समस्तकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूति-
मात्रत्वाच्छुद्ध ।

[गायत्री ७३]

याका अर्थ - समस्त ही कत्ता कर्म आदि कारकनिका
समूहकी प्रक्रियात पारगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अमेद-
ज्ञान तन्मात्र है, ताँतें शुद्ध हैं । ताँतें ऐंम शुद्ध शब्दका अर्थ
जानना । बहुरि ऐंम ही केवलशब्दका अर्थ जानना । जो पर
भावतें भिन्न नि केवल आप ही ताका नाम केवल है । ऐंम ही
अन्य यथार्थ अर्थ अन्धारना । पर्याय अपेक्षा शुद्धपनों मानै,
वा केवली आपकौ मानै महाविपरीति होय । ताँतें आपकौ
द्रव्यपयायरूप अत्रलोकना । द्रव्यकरि सामा यस्वरूप अवलोकना
पर्यायकरि विशेष अन्धारना । ऐंम ही चित्तवन किए सम्यग्दर्श

हो है। जार्त सांचा अवलोकै बिना सम्यग्दृष्टी कैमें नाम पावै। बहुरि मोक्षमार्गविषै तौ रागादिक मेटनेका श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है। सो तौ विचार ही नाहो। भाषका शुद्ध अनुभवनतै ही आपका सम्यग्दृष्टी मानि अन्य सर्व साधननिका निषेध करै है।

[शास्त्राभ्यासको निरर्थकनाका प्रतिषेध]

शास्त्रअभ्यासकरना निरर्थक पतावै है, द्रव्यादिकका वा गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादिका विचारको विकल्प ठहरावै है, तपश्चरण करना व्रथा व्रणेश करना मानै है, घटादिकका धारना बधनमें परना ठहरावै है, पूजनादि कार्यानिको शुभास्त्र जानि हेय प्ररूपै है, इत्यादि सर्व साधनिको उदाय प्रमादी होय परिणमै है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय, तौ मुनिनकै भी तौ ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। ध्यानविषै उपयोग न लागै, तब अध्ययनहीविषै उपयोग नू लगारै है, अन्य ठिकाना चीचर्म उपयोग लगावने याग्य है नाहीं। बहुरि शास्त्रकरि तत्त्वनिका विशेष जाननेत सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होय है। बहुरि तहां यावत् उपयोग रहै, तावत् रूपाय मद रहै। बहुरि आगामी धीतरागभावनिकी वृद्धि होय। ऐमें कार्यको निरर्थक कैम मानिए ?

बहुरि वह कहै जो जिनशास्त्रनिविषै अध्यात्मउपदेश है,

तिनिका अभ्यास करना, अन्य शास्त्रनिका अभ्यासकरि किल्लु सिद्धि नाही ।

ताकों कहिए है- जो तेरे मांची दृष्टि भई है, तौ सर्वही जैनशास्त्रकार्यकारी है । तहा भी मुरपनै अध्यात्मशास्त्रनिविषै तौ आत्मस्वरूपका मुख्य कथन है सो सम्यग्दृष्टी भए आत्मस्वरूपका तौ निर्णय होय चुकै, तब तौ ज्ञानकी निर्मलताके अर्थि वा उपयोगकी मद कषायरूप राखनेके अर्थि अन्य शास्त्रनिका अभ्यास मुरप चाहिए । अर आत्मस्वरूपका निर्णय मया है, ताका स्पष्ट राखनेके अर्थि अध्यात्मशास्त्रनिका भी अभ्यास चाहिए । परन्तु अन्यशास्त्रनिविषै अरुचि तौ न चाहिए । जाके अन्यशास्त्रनिके अरुचि है, ताके अध्यात्मकी रुचि सांची नाहीं । जैसे जाके विषयासक्तपना होय, सो विषयासक्त पुस्पनिकी कथा भी रुचितै सुनै, वा विषयके विशेषकों भी जानै, वा विषयका आचरनविषै जो साधन होय, ताका भी हितरूप जानै, वा विषयका स्वरूपकों भी पहिचान, तैसे जाके आत्मरुचि भई होय, सो आत्मरुचिके धारक तीर्थ करादिक तिनका पुराण भी जानै, बहुरि आत्माके विशेष जाननेकों गुणस्थानादिककों भी जानै, बहुरि आत्मआचरणविषै ल ततादिक साधन हैं, तिनकों भी हितरूप मानै, बहुरि आत्माके स्वरूपका भी पहिचान । तातें च्यार या ही अनुयोग कार्यकारी हैं । बहुरि तिनिका नीका ज्ञान होनेके अर्थि शब्दन्यायशास्त्रादिकका भी जानना चाहिए । सो

अपनी शक्तिके अनुसारि सबनिका थोरा वा बहुत अभ्यास करना योग्य है ।

[बुद्धिकी निर्मलता आत्मस्वरूपकी स्थिरता में है]

बहुरि वह कहै हैं, 'पद्मनदिपचीसी' विषे ऐसा कथा है—जो आत्मस्वरूपतें निकसि घात शस्त्रनिविषे बुद्धि विचरै है, सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है ।

ताका उत्तर—यहु सत्य कथा है । बुद्धि तौ आत्माकी है, ताको छोरि परद्रव्य शस्त्रनिविषे अनुरागिणी भई, ताको व्यभिचारिणी ही कहिए । परन्तु जैसे स्त्री शीलवती रहै, तौ योग्य ही है । अर न रखा जाय, तौ उत्तमपुरुषको छोरि चांडाला दिकका सेवन किए तौ अत्यन्त निंदनीक होइ । तैसे बुद्धि आत्मस्वरूपविषे प्रवर्तै, तौ योग्य ही है । अर न रखा जाय, तौ प्रशस्त शास्त्रादि परद्रव्यको छोरि अप्रशस्त विषयादिविषे लगैती महानिंदनीक ही होइ । सो मुनिनिके भी स्वरूपविषे बहुत काल बुद्धि रहै नाही, तौ तेरी कैसे रखा करै ? ताते शास्त्राभ्यासविषे बुद्धि लगवाना युक्त है । बहुरि जो द्रव्यादिकका वा गुणस्थाना दिकका विचारको विकल्प ठहरावै है, सो विकल्प तौ है, परन्तु निर्विकल्प उपयोग न रहै, तब इनि विकल्पनिको न करै तौ अन्य विकल्प होइ, ते बहुत रागादिगर्भित हो हैं । बहुरि निर्विकल्प दशा सदा रहै नाहीं । जाते छत्रस्थका उपयोग एकस्व उत्कृष्ट रहै, तौ अतर्गुहृत रहै । बहुरि तू कहैगा—मैं आत्म-

स्वरूपहोका चितवन अनेक प्रकार किया करूंगा, सो सामान्य चितनविषे तौ अनेकप्रकार बने नाहीं । अर विशेष करेगा, तब द्रव्य गुण पर्याय गुणस्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध अवस्था इत्यादि विचार होयगा ।

[रत्नत्रयकी पूर्णता ही मोक्षका मार्ग है]

बहुरि सुनि, केवल आत्मचानहीत तौ मोक्षमार्ग होइ नार्ही । सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए, वा रागादिक दूरि किए मोक्षमार्ग होगी । सो सप्ततत्त्वनिका विशेष जाननेको जीव अजीवके विशेष वा कर्मके आस्रव उधादिकका विशेष अवश्य जानना योग्य है, ताते सम्यग्दर्शन ज्ञानकी प्राप्ति होय । बहुरि तदा पीछे रागादिक दूरि करने सा जे रागादिक घटावनेके कारण तिनको छोडि जे रागादिक घटावनेके कारण होय तदा उपयोगको लगावना सो द्रवादिका गुणस्थानादिकका विचार रागादिक घटावनेको कारण है । इनविषे कोई रागादिकका निमित्त नाहीं, ताते सम्यग्दृष्टी भए पीछे भी इहां ही उपयोग लगावना ।

बहुरि यह कहै है - रागादि मिटावनेको कारण होय तिन विषे तौ उपयोग लगावना, परन्तु त्रिलोकवर्ती जीवनिकी गति आदि विचार करना, वा कर्मका बध उदयसत्तादिकका घण विशेष जानना, वा त्रिलोकका आकार प्रमाणादिक जानना इत्यादि विचार कौन कार्यकारी है ।

ताका उत्तर—इनको भी विचारत रागादिक बघते नहीं। जति एतं य यात्रे इष्ट अनिष्टरूप हें नाहीं। तातें वर्तमान रागादिकको कारण नाहीं। बहुरि इनको विज्ञाप जानै तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातें आगामी रागादिक घटावनेको ही कारण है। तातें कार्यकारी हें।

बहुरि बह कहै हें—स्वर्ग नरकादिकको जानै तहां रागद्व प हो है।

ताका समाधान—जानाके तौ असी बुद्धि होइ नाहीं, अज्ञानीके होय। तहां पाप छोरि पुण्यकार्यरिपे लागै तहां मिछू रागादिक घटे ही है।

बहुरि बह कहै है—शास्त्रविषै ऐमा उपदेश है, प्रयोजनभूत धोरा ही जानना कार्यकारी है। तातें बहुत विकल्प काहेको कीजिए।

ताका उत्तर—जे जीव अन्य बहुत जानै, अर प्रयोजनभूतको न जानै, अथवा जिनकी बहुत जानने की शक्ति नाहीं, तिनको यह उपदेश दिया है। बहुरि जिनके बहुत जानने की शक्ति होय, ताको तौ यह कक्षा नाहीं जा बहुत जाने घुरा हागा। जेता बहुत जानैगा, तितना प्रयोजनभूत जानना निमल होगा। जातें
 ॐ ऐमा कक्षा है—

[सामान्यशास्त्रतो नून विशेषो बलवान् भवेत्]

याका अर्थ यन्—सामान्य शास्त्रतें विशेष बलवान् है । विशेषहीतें नीकें निर्णय हो है । तातें विशेष जानना योग्य है । बहुरि वह तपश्चरणकों यथा क्लेश ठहरावै है । सो मोक्षमार्ग भए तौ ससारी जीवनितें उलटी परणति चाहिए । ससारीनिकें इष्ट अनिष्ट सामग्रीतें रागद्वेष हो है याकें रागद्वेष न चाहिए । तहां राग छोडनेकें अर्थ इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है । अर द्वेष छोडनेकें अर्थ अनिष्ट अनशनादिककों अगीकार करै है । स्वाधीनपन ऐमा साधन होय तौ पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलें भी राग द्वेष न होय । सो चाहिए तो अस अर तेरें अनशनादिकतें द्वेष भया । तातें ताको क्लेश ठहराय । जब यह क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहरया । तहां राग आया, तौ ऐसी परिणति तौ ससारीनिकें पाईए ही है । तें मोक्षमार्गी होय, कहा क्रिया ।

बहुरि जो तू कहैगा, केई सम्पगृष्टी भी तपश्चरण नाहीं करै है ।

ताका उत्तर—यहु कारणविशेषतें तप न होय सकै है । परन्तु श्रद्धानविषे तौ तपकों भला जानै है । ताके साधनका उद्यम राखै है । तेरें तौ श्रद्धान यहु है तप करना क्लेश है । बहुरि तपका तेरें उद्यम नाहीं । तातें तेरें सम्पगृष्टि कैसैं होय ?

ताका उत्तर—इनको भी विचारतै रागादिक घघते नाहीं । जात एत य याके इष्ट अनिष्टरूप हँ नाही । तातै परतमान रागादिकको कारण नाहीं । जहुरि इनको विशेष जानै तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तात आगामी रागादिक घटावनेको ही कारण है । तातै कार्यकारी हँ ।

बहुरि वह कहै हँ—स्वर्ग नरकादिकको जानै तहां रागद्वय हो है ।

ताका समाधान—झानीके तौ असी बुद्धि होइ नाहीं, अघानीके होय । तहां पाप छोरि पुण्यकार्यनिषे लागै तहां किल्लू रागादिक घटे ही है ।

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषै ऐमा उपदेश है, प्रयोजनभूत घोरा ही जानना कार्यकारी है । तातै बहुत विकल्प काहेको कीजिए ।

ताका उत्तर—जे जीव अन्य बहुत जानै, अर प्रयोजनभूतको न जानै, अथवा जिनकी बहुत जानने की शक्ति नाहीं, तिनको यह उपदेश दिया है । बहुरि जिनके बहुत जानने की शक्ति होय, ताको तौ यह कक्षा नाहीं जो बहुत जाने घुरा हागा । जेता बहुत जानैगा, तितना प्रयोजनभूत जानना निर्मल होगा । जातै शास्त्रनिषै अमा कक्षा है—

[सामान्यशास्त्रतो नून विशेषो बलवान् भवेत्]

याका अर्थ यहू—सामान्य शास्त्रतें विशेष बलवान् है । विशेषहीत नीकै निर्णय हो है । तातें विशेष जानना योग्य है । बहुरि बह तपश्चरणकों बृथा क्लेश ठहरावै है । सो मोक्षमार्ग भए तौ ससारी जीवनिंत उलटी परणति चाहिए । ससारीनिकै इष्ट अनिष्ट सामग्रीतें रागद्वेष हो है याकै रागद्वेष न चाहिए । तहां राग छोडनेकै अथि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है । अर द्वेष छोडनेकै अर्थि अनिष्ट अनशनादिकको अगीकार करै है । साधनपरनै अमा साधन होय तौ पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलै भी राग द्वेष न होय । सो चाहिए तौ असै अर तेरै अनशनादिकतें द्वेष भया । तातें ताकों क्लेश ठहराया । जब यहू क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहरया । तहां राग आया, तौ असी परिणति तौ ससारीनिकै पाईए ही है । तें मोक्षमार्गी होय, कहा किया ।

बहुरि जो तू कहैगा, केई सम्पदष्टी भी तपश्चरण नाहीं करै है ।

ताका उत्तर—यहू कारणविशेषतें तप न होय सकै है । परन्तु श्रद्धानविषै तौ तपको भला जानै है । ताके साधनका उद्यम राखै है । तेरै तौ श्रद्धान यहू है तप करना क्लेश है । बहुरि तपका तेरै उद्यम नाहा । तातें तेरै सम्पदष्टि कैमें होय ?

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषे ऐसा कहा है, तप आदिका क्लेश करै है, तौ करौ ज्ञानविना सिद्धि नाही ।

ताका उत्तर—यहु जं जीव तत्त्वज्ञानत तौ पराट्मुख हैं तप हातें माक्ष मानै हैं, तिनकाँ ऐसा उपदेश दिया है । तत्त्वज्ञानविना केवल तपहातें मोक्षमार्ग न होय । बहुरि तत्त्वज्ञान भए रागादिक भेटनेके अर्थि तपकरनेका तौ निषध है नाहा । जा निषध होय तौ गणधरादिक तप काहकाँ करै । तातें अपनी शक्तिअनुसारि तप करना योग्य है । बहुरि वह ब्रतादिककाँ बधन मानै है । सो स्वच्छन्दवृत्ति तौ अज्ञानअवस्थाहीविषे थी । ज्ञान पाए तौ परिणतिकौ राकै हीहै । बहुरि तिस परिणति रोकनेके अर्थि बाह्य हिंसादिक कारणनिका त्यागी भया चाहिए ।

बहुरि वह कहै है—हमारै परिणाम तौ शुद्ध है बाहर त्याग न किया तौ न किया ।

ताका उत्तर—जे ए हिंसादिकार्यतेरे परिणाम बिना स्वयमेव होते होय, तौ हम जैसे मानै । बहुरि तू जो अपना परिणामकरि कार्य करै, तहां तेरे परिणाम शुद्ध कैसे कहिए । विषयसेवनादि क्रिया वा प्रमादगमनादि क्रिया परिणामविना कर्म होय । सो क्रिया तौ आप उद्यमी होय तू करै, अर तहां हिंसादिक होय ताकाँ तू गिने नाहीं, परिणाम शुद्ध मानै । सो ऐसी मानित तरे परिणाम अशुद्ध ही रहैगे ।

[प्रतिज्ञाकी उपादेयताका वर्णन]

बहुरि बह कहै है—परिणामनिकाँ रोकै ए बाध हिंसादिक
भी घटाईए । परन्तु प्रतिज्ञा करनेमें बधन हो है, ताँत प्रतिज्ञा
रूप बत नाहीं अगीकार करना ।

ताका समाधान—जिम कार्य करनेकी आशा रहै है, ताकी
प्रतिज्ञा न लीजिए है । अर आशा रहै तिमतेँ राग रहै है । तिम
रागभावत बिना काये किए भी अचरिततेँ कर्मका बध हुवा करै ।
ताँत प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है । बहुरि कार्य करनेका बधन
भए बिना परिणाम कैसै रुँकगे । प्रयोजन पढे तद्रूप परिणाम होय
ही होय वा बिना प्रयोजन पढेँ भी ताकी आशा रहै । ताँत
प्रतिज्ञा करनी युक्त है ।

बहुरि बह कहै है—न जानिए कँसा उदय आँर, पीछेँ
प्रतिज्ञाभंग होय, तौ महापाप लागै । ताँत प्रारब्ध अनुसारि
कार्य बनेँ, मो बनों, प्रतिज्ञाका विरुद्ध न करना ।

ताका समाधान—प्रतिज्ञा ग्रहण करत जाका निवाह होता
न जानै, तिम प्रतिज्ञाकाँ तौ करै नाहीं । प्रतिज्ञा लेतेँ ही यहू
अभिप्राय रहै, प्रयोजन पढेँ छोडि धाँगा, तौ वह प्रतिज्ञा कौन
कार्यकारी भई । अर प्रतिज्ञा ग्रहण करत तौ यहू परिणाम है,
मरणात् भए भा न छाडोगा तौ ऐसी प्रतिज्ञाकरनी युक्त ही
है । बिना प्रतिज्ञा किए अचरित सनधी बध मिटेँ नाहीं

आगामी उदयकामयकरि प्रतिज्ञा न लीजिए मो उदयको विचारै
 मर्ल ही कर्त्तव्यकानाश होय । जैसे आपको पचाता जान जितना,
 तितना भोजन करै । कदाचित् काहूँ भोजनते अजीर्ण भया
 होय, तौ तिस भयते भोजन करना छाँडै तौ मरण ही होय ।
 तैसे आपको निवाह होता जान, तितनी प्रतिज्ञा करै । कदाचित्
 काहूँ प्रतिज्ञाते भ्रष्टपना भया होय, तौ तिस भयते प्रतिज्ञा
 करनी छाँडै तौ असयम ही होय । ताँते बने सो प्रतिज्ञा लेनी
 युक्त है । बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तो कार्यबने ही है, तू उद्यमी
 होय भोजनादि काहेको करै है । जो तहा उद्यम करै है, तौ
 त्याग करनेका भी उद्यम करना युक्त ही है । जब प्रतिमासत्
 तेरी दशा होय जायगी, तब हम प्रारब्ध ही मानेंगे तेरा कर्त्तव्य
 न मानेंगे । ताँते काहूँ स्वच्छद होनेकी युक्ति बनावै है ।
 बने सो प्रतिज्ञा करि ब्रत धारता योग्य ही है ।

[शुभोपयोग सर्वथा हेय नहीं है]

बहुरि यह पूजनादि कार्यको शुभासव जानि हेय मानै हैं ।
 सो यह सत्य है । परन्तु जो इनि कार्यानिको छोरि शुद्धोपयोग-
 रूप होय तौ भले ही हैं । अरु विषय कपायरूप अशुभरूप प्रवृत्तै,
 तौ अपना बुरा ही किया । शुभोपयोगतै स्वर्गादि होय वा भली
 वासनातै वा भला निमित्ततै कर्मका स्थिति अनुभाग घटि जाय,
 तौ सम्यक्तादिकी भी प्राप्ति हो जाय । बहुरि अशुभोपयोगतै

नरक निर्गौदादि होय, वा घुरी वासनात वा घुरा निमित्ततें कर्मका स्थिति अनुभाग बध जाय, तौ मम्यक्तादिक महा दुर्लभ होय जाय । बहुरि शुभोपयोगहोत कपाय मद हो है । अशुभोपयोगहोत तीव्र हो है । सो मदकपायका कारण छोरि तीव्र कपायका कार्य करना तौ ऐसा है, जैसे कडवी वस्तु न खानी अर विष खाना । सो यह अज्ञानता है ।

बहुरि बह कहै हैं—शास्त्रविष शुभ अशुभको समान कहा है, तातें हमको तौ विशेष जानना युक्त नाही ।

ताका समाधान—जे जीव शुभोपयोगको मोक्षका कारण मानि उपायेय माने हैं, शुद्धोपयोगको नाही पहिचाने हैं, तिनको शुभ अशुभ दौऊनिको अशुद्धताकी अपेक्षा वा बधकारणकी अपेक्षा समान दिखाए है बहुरि शुभ अशुभनिका परस्पर विचार कीजिए, तौ शुभमात्रनिके विषे कपायमद हो है, तातें बध हीन हो है । अशुभमात्रनिके विषे कपायतीव्र हो है, तातें बध बहुत हो है । ऐसे विचार किए अशुभकी अपेक्षा सिद्धांतविषे शुभको भला भी कहिए है । जैसे रोग तौ थोरा वा बहुत घुरा ही है । परन्तु बहुत रोगकी अपेक्षा थोरा रोगको भला भी कहिए । तातें शुद्धोपयोग नाही हाय, तब अशुभतें छुटि शुभविषे प्रवर्तना युक्त है । शुभको छारि अशुभविषे प्रवर्तना युक्त नाही ।

बहुरि बह कहै हैं—जो कामादिक वा धुषादिक मिटावनेको अशुभरूप प्रवृत्ति तौ भए बिना रहती नाही, अर शुभप्रवृत्ति

चाहिकरि करनीपै है । ज्ञानीकै चाहि चाहिए नाही । ताते शुभका उद्यम नाही करना ।

ताका उत्तर—शुभप्रवृत्तिरिपे उपयोग लागनेकरि वा ताके निमित्ततै विरागता बधनेकरि कामादिक हीन हो है । अर धुषा दिकविषै भी सफलेश थोरा हो है । ताते शुभोपयोगका अभ्यास करना । उद्यम किए भी जो कामादिक वा धुषादिक पीठ बट्टे हैं तो ताके अर्थि जैसे थोरा पाप लागे, मो करना । बहुति शुभोपयोगको छोडि निश्चक पापरूप प्रवर्तना तो युक्त नाही । बहुति तू कहै है—ज्ञानीकै चाहि नाही अर शुभोपयोग चाहि किए हो है सो जैसे पुरुष किंचिन्मात्र भी अपना धन दिया चाहै नाही, परन्तु जहां बहुत द्रव्य जाता जानै, तहां चाहिकरि स्तोक द्रव्य देनेका उपाय करै है । तैसे ज्ञानी किंचिन्मात्र भी कषायरूप कार्य किया चाहै नाही । परन्तु जहां बहुत कषायरूप अशुभ कार्य होजा जानै तहां चाहिकरि स्तोक कषायरूप शुभकार्य करनेका उद्यम करै है । एसे यहु बात सिद्ध भई—जहां शुभोपयोग होता जानै, तहां तो शुभकार्यका निषेध ही है अर जहां अशुभापयोग हाता जानै, तहां शुभको उपायकरि अगीकार करना युक्त है । या प्रकार अनेक व्यवहारकार्यको उथापि स्वच्छदपनाको स्यापै है, ताका निषेध किया ।

[केवलनिश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति]

अब तिस ही केवल निश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति दिखाइए है—

एक शुद्धात्माकों जानें ज्ञानी हो है—अन्य किछु चाहिए नहीं, ऐसा जानि बबहु एकांत तिष्ठकरि ध्यानमुद्रा धारि मैं सर्वकर्मउपाधिरहित सिद्धसमान आत्मा हौं, इत्यादि विचारकरि मतुष्ट हो है। सो ए विशेषण कैसँ समवै हैं। ऐसा विचार नाही। अथवा अचल अरुड अनौपम्यादि विशेषण करि आत्माकों ध्यावै हैं, सो ए विशेषण अन्य द्रव्यनिविर्षे भी समवै हैं। बहुरि ए विशेषण किस अपेक्षा है, सो विचार नाही। बहुरि कदाचित् सता बैठ्या तिस तिस अवस्थाविषे ऐसा विचार राखि आपकोँ ज्ञानी मानै है। बहुरि ज्ञानीके आस्रव बध नाही, ऐसा आगम-विषे बह्या है। ताँ कदाचित् विषयकषायरूप हो है। तहाँ बध होनेका भय नाही है। स्वच्छद भया रागादिरूप प्रवर्त्ते है। सो आषा परकी जाननेका तौ चिन्ह वैराग्यमात्र है, सो समय-सारविषे बह्या है—

“सम्यग्दृष्टेर्भवति नियत ज्ञानवैराग्यशक्ति ।”

याका अर्थ—यसु सम्यग्दृष्टीके निश्चयसों ज्ञानवैराग्यशक्ति होय। बहुरि बह्या है—

सम्यग्दृष्टि स्वयमयमह जातु बन्धो न मे स्या—
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोत्याचरन्तु ।

१ सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्ति, एव वस्तुत्व कल्पितुमय स्वान्य रूपातिमुक्त्या। यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वत स्व परं च, स्वस्मिन्नास्ते- विरमति परात्सर्वता रागयोगात् ॥ निर्जेरा० ४ कलश ॥

आलम्ब्यन्तां समितिपरतां ते यतोद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वं शून्या ॥५॥

याका अर्थ—स्वयमेव यहू में सम्यग्दृष्टी हो, मेरे कदाचित् बध नहीं, ऐसे ऊँचा फुलाया है मुख जिनमें ऐसे रागी वैराग्य शक्ति रहित भी आचरण करे हैं, तो क्यों, बहुत पच-समितिकी साधनाओं अचल हैं, तो अवलमों, जाते वैराग्यज्ञान-शक्ति बिना अजड़ पापी ही हैं। ए दाँऊ आत्मा अनात्माका ज्ञानरहितपनाते सम्यक्त्वरहित ही हैं।

बहुत पूछिए हैं—परकों पर जान्या, तो परद्रवविषय रागादि करनेका कदा प्रयोजन रहा ? तहा वह कहै है—मोहके उदयते रागादि हो है। पूर्व भरतादिक ज्ञानी भण, तिनके भी विषय कषायरूप कार्य भया सुनिए है।

ताका उचर—ज्ञानीके भी मोहके उदयते रागादिक हो है यहू सत्य, परन्तु बुद्धिपूर्वक रागादिक होते नाही। मो विशेष वर्णन आगे करेंगे। बहुत जाके रागादि होनेका किछु विपाद नाही, तिनके नाशका उपाय नाही ताके रागादिक घुर है ऐसा श्रद्धान भी नाही समवे है। ऐसे श्रद्धानबिना सम्यग्दृष्टी कैसे होय ? जीवाजीवादि तत्त्वनिके श्रद्धान करनेका प्रयोजनतो इतना ही श्रद्धान है। बहुत भरतादिक सम्यग्दृष्टीनिके विषय कषाय-

निकी प्रवृत्ति जैमें हो है, सो भी विशेष आगे कहेंगे । वृ उनका उदाहरणकरि स्वच्छन्द हागा, तौ तेरे तीव्र आश्रय घघ होगा । सोई कहा है—

मग्ना ज्ञाननयैपिणोपि यदि ते स्वच्छन्दमन्दोद्यमा ५

याका अर्थ—यहु ज्ञाननयक अवलोकनहार भी ज स्वच्छन्द मद उद्यमी हो है, ते समारविषे डूब और भी तहां “नानिन कर्म न जातु कर्तुं मुचित” —इत्यादि कलशाविषे वा “तथापि न निरर्गल चरितुमिष्यते ज्ञानिन ” इत्यादि कलशाविषे स्वच्छन्द होना निषय्या है । विना चाहि जो कार्य होय, सो कर्मउपका कारण नाहीं । अभिप्रायतं चर्चा होय करे अर ज्ञाता रहै, यहु तौ बने नाहीं, इत्यादि निरूपण किया है ताते रागादिक घुर अहितकारी जानि तिनका नाशक अथि उद्यम राखना । तहा अनुक्रमविषे पहल तीव्ररागादि छोड़नेके अथि अशुभ कार्य छोरे शुभकार्यविषे लागना, पीछे मदरागादि भी छोड़नेके अथि शुभका भी छोरे शुद्धोपयोगरूप होना । यदुरि केई जीव अशुभविष बलेश मानि व्यापारादि कार्य वा स्त्रीसेवनादि कार्यनिका भी

१ मना कमनयावत्स्वनपरा ज्ञानं न जानन्ति ये ।

मग्ना ज्ञाननयैपिणोपि यदि ते स्वच्छन्दमन्दोद्यमा ॥

विश्वस्योपरि ते तरन्ति सतत शान भवन् स्वय ।

ये दुर्जनि न कम जानु न बने यान्ति प्रमादस्य ॥

—नाटक मयनार ।

घटावै हैं। बहुत श्रमकों हेय जानि शास्त्राभ्यासादि कार्यनिर्विषे
 नाहीं प्रवर्त्तें हैं। बीतरागभाषण्य शुद्धोपयोगकों प्राप्त भण
 नाही, ते जीव अर्थ काम धर्म मोक्षण्य पुरुषार्थतें रहित होते-
 मते आलसी निरुद्यमी हो हैं। तिनकी निंदा पचास्तकायकी
 व्याख्याविषे कीनी है। तिनकों दृष्टान्त दिया है—जैम बहुत
 गोर खांड खाय पुरुष आलसी हो है, वा जैम घृर निरुद्यमी है,
 तैसे ते जीव आलसी निरुद्यमी भए हैं।

अब इनकी पूछिए है—तुम वाद्य तौ शुभ अशुभ कार्य-
 निकौ घटाया, परन्तु उपयोग तौ आलस्यनविना रहता नाहीं, सो
 तुम्हारा उपयोग कहा रहै है, सो कइो। जो यह कहै—आत्माका
 चिंतन करै है, तो शास्त्रादिकरि अनेक प्रकारका आत्माका
 विचारकों तौ तुम विरल्प ठहराया अर कोई विगण आत्माका
 जाननेमें बहुत काल लागै नाहीं, बारबार एकरूप चिंतनविषे
 छत्रस्थता उपयोग लगता नाहीं। गणघरादिकथा भी उपयोग
 में न रहि सकै, तातें वै भी शास्त्रादि कार्यनिर्विषे प्रवर्त्ते हैं।
 तेरा उपयोग गणघरादिकतें भी कर्में शुद्ध भया मानिए। तातें
 तेरा कहना प्रमाण नाहीं। जैम कोउ व्यापारादिविषे निरुद्यमी
 होय ठाला जैस तैस काल गमारै, तैस तू धर्मविषे निरुद्यमी
 होइ प्रमादी यं ही काल गमारै है। कथहूँ किउ चिंतनसा करै,
 कथहूँ पातें बनारै, कथहूँ भोजनादि करै, अपना उपयोग निर्मल
 करनेकों शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्तिआदि कार्यनिर्विषे प्रवर्त्तता

नार्ही । सुनासा होय प्रमादी होनेका नाम शुद्धोपयोग ठहराय, तहा क्लेश थोरा होनेतैं जैसे कोई आलसी होय परया रहनेमें सुख मानै, तैम आनन्द मानै हैं । अथवा जैसे सुपनैविषै आपको राजा मानि सुखी होय, तैस आपको भ्रमत सिद्ध समान शुद्ध मानि आप ही आनदित हो है । अथवा जैसे कही रति मानि सुखी हो है, तैस क्लिष्ट विचार करनेविषै रति मानि सुखी होय, ताको अनुभजजनिता आनद कहै है । बहुरि जैसे कही अरति मानि उदाम होय, तैस व्यापारिक पुत्रादिकको खेदका कारण जानि तिनतैं उदास रहै है, ताको वैराग्य मानै है । सो ऐसा ज्ञान वैराग्य तो कपायगर्भित है । जो बीतरागरूप उदामीन दशविषै निराकुलता होय, सो साचा आनद ज्ञान वैराग्य ज्ञानी जीवनिके चारित्रमोहकी हीनता भए प्रकट हो है । बहुरि वह व्यापारादि क्लेश छोडि यथेष्ट भोजनादिकरि सुखी हुबा प्रवृत्त हैं । आपको तहां कपायरहित मानै है, सो ऐस आनन्दरूप भए तो रौद्रध्यान हो है । जहां सुखमामग्री छोडि दुखसामग्रीका उपयोग भए सक्लेश न होय, रागद्वेष न उपजै, तहा निःकपाय-भाव हो है । ऐम भ्रमरूप तिनकी प्रवृत्ति पाईए है । या प्रकार जे जीव केवल निश्चयाभासके अवलबा हैं, ते मिथ्यादृष्टी जानने । जैसे वेदाती वा सार्व्यमतवाले जीव केवल शुद्धात्माके भ्रद्धानी हैं, तैस ए भी जानने । जात भ्रद्धानकी समानताकरि उनका उपदेश इनको इष्ट लागै है, इनका उपदेश उनको इष्ट लागै है ।

घटावे हैं। बहुरि शुभकों हेय जानि शास्त्रा
 नाहीं प्रवर्षे हैं। वीतरागमाधरूप शुद्ध
 नाहीं, ते जीव अर्थ काम धर्म मोक्षरूप
 मते आलसी निरुद्यमी हो हैं। तिनकी वि
 व्याख्याविषय कीनी है। तिनकों दृष्टान्त
 खीर खांड म्याय पुरुष आलसी हो है, पा
 तैसँ ते जीव आलसी निरुद्यमी भए हैं।

अब इनकी पूछिए है—तुम बाह्य
 निकों घटाया, परन्तु उपयोग तो आलस
 तुम्हारा उपयोग कहा रहे है, मो कइो।
 चितवन करै है, तो शास्त्रादिकरि अनेक
 विचारकों तो तुम विरुद्ध ठहराया अरु
 जाननेर्म बहुत काल लागे नाहीं, बारबार
 छद्मस्थका उपयोग लगता नाही। गण
 धर्म न रहि मके, ताँते वै भी शास्त्रादि
 तेरा उपयोग गणधरादिकत भी कैसें शु
 तेरा कहना प्रमाण नाही। जैसें कोठ
 होय ठाला जैसें तैसें काल गमावे, तेम
 होइ प्रमादी य ही काल गमावे है। कब
 कबहूँ बात बनावे, कबहूँ भोजनादि करे

तपश्चरण नि

चित्तवन्तें निर्जरा बंध नहीं । रागादिकके घटे निर्जरा है, रागादिक भए बंध है । ताकें रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नहीं, तातें अन्यथा मानै हैं ।

[निर्विकल्प दशा विचार]

तहां वह पूछै हैं कि ऐस है तौ निर्विकल्प अनुभव दशाविषे नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्प-करनेका निषेध किया है, सो कैसे है ?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिषेधे लगे रहे हैं, अमेदरूप एक आपाकें अनुभव नहीं हैं, तिनकें ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सर्वविकल्प वस्तुका निश्चयकरनेका कारण हैं । वस्तुका निश्चय भये इनका प्रयोजन किल्लू रहता नहीं । तातें इन विकल्पनिकों भी छोडि अमेदरूप एक आत्माका अनुभव करना । इनके विचाररूप विकल्पनिही विषे फँसि रहना योग्य नहीं । चद्रुहि वस्तुका निश्चय भए पोछै ऐसा नहीं, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यहीका चित्तवन रक्षा करे । स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशयरूप जानना होय, परन्तु धीतरागता लिए होय, तिसहीका नाम निर्विकल्प दशा है ।

तहां वह पूछै है—यहां तौ बहुत विकल्प भए, निर्विकल्प-संज्ञा कैसे समवे ?

ताका उत्तर—निर्विचार होने का नाम निर्विकल्प नहीं

[स्व द्रव्य पर-द्रव्य चिन्तन द्वारा निर्जरा, आस्रव और वंधका प्रतिषेध]

बहुरि तिन जीवनिर्क गेमा श्रद्धान हे—जो कवल शुद्धा-
न्माका चिंतवनत तौ सवर निज्जेरा होतें, वा मुक्तात्माका सुखका
अश तहा प्रकट होतें । बहुरि जीवके गुणम्यानादि अशुद्ध भाव-
निका वा आप बिना अन्य जीव पुद्गलादिकका चिंतवन किम
आस्रव बंध होतें । तातें अन्य विचारतें पागटमुरा गतें हैं । सो
यहु भी सत्य श्रद्धान नाही, जातें शुद्ध स्वद्रव्यका चिंतवन करौ,
वा अन्य चिंतवन करी । जो वीतरागता लिए भाव होय, तौ
तहां सवर निर्जरा ही है । अर जहां रागादिरूप भाव, होय, तहां
आस्रव बंध ही हैं । जो परद्रव्यके जाननेहोतें आस्रव बंध होय
तौ केवली तौ समस्त परद्रव्यको जानै हैं, तिनके भी आस्रव बंध
होय बहुरि वह कहै है—जो छद्मस्थके परद्रव्य चिंतवन होतें
आस्रव बंध होतें । सो भी नाही, जातें शुक्लस्थानविषे भी
मुनिनके छहों द्रव्यनिका द्रव्यगुणपर्यायनिका चिंतवन होना
निरूपण किया है वा अधिमन पर्यायादिविषे परद्रव्यके जान-
नेहीकी विशेषता होतें । बहुरि चौथा गुणस्थानविषे कोई अपने
स्वरूपका चिंतवन करै हैं, ताके भी आस्रव बंध अधिक है, वा
[गुणश्रेणी निर्जरा नाही है । पचम पष्ठ गुणस्थानविषे आहार
विहारादि क्रिया होतें परद्रव्य चिंतवनतें भा आस्रव बंध थोरा
होतें वा गुणश्रेणी निर्जरा हुवा करै हैं । तातें स्वद्रव्य परद्रव्यको

चित्तवृत्तों निर्जरा बंध नहीं। रागादिकके घटे निर्जरा है, रागादिक भए बंध है। तार्त्तों रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नहीं, तार्त्तें अन्यथा मानै हैं।

[निर्विकल्प दशा विचार]

तहां वह पूछै है कि ऐस है तों निर्विकल्प अनुभव दशाधिर्षे नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्प-करनेका निषेध किया है, सो कैसे हैं ?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिषिष्य लागि रहे हैं, अमेदरूप एक आपाका अनुभवे नाहीं हैं, तिनका ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सवेविकल्प वस्तुका निश्चयकरनेका कारण हैं। वस्तुका निश्चय भये इनका प्रयोजन किछू रहता नाहीं। तार्त्तें इन विकल्पनिका भी छोडि अमेदरूप एक आत्माका अनुभव करना। इनके विचाररूप विकल्पनिही धिर्षे फँसि रहना योग्य नाहीं। बहुते वस्तुका निश्चय भए पीछे ऐसा नाहीं, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यहीका चित्तधन रखा करै। स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशयरूप जानना होय, परन्तु धीतरागता लिष्ट होय, तिमहीका नाम निर्विकल्प दशा है।

तहां वह पूछै है—यहां तों बहुत विरल्प भए, निर्विकल्प-संज्ञा कैसे समये ?

ताका उत्तर—निर्विचार होने का नाम निर्विकल्प नाहीं

है। जाते छद्मस्थकै जानना विचार लिए है। ताका आभाव माने ज्ञानका अभाव होय, तब जडपना भया सो आत्माकै होता नाहीं। ताते विचार तौ रहै। यहुरि जो कहिए, एक सामान्यका ही विचार रहता है, विशेषका नाहीं। तौ सामान्यका विचार तौ बहुतकाल रहता नाहीं वा विशेषकी अपेक्षाबिना सामान्यका स्वरूप भासता नाहीं। यहुरि कहिए—आपहीका विचार रहता है, परका नाहीं, तौ परविषय परबुद्धि भए बिना आपविषय निजबुद्धि कैमे आये ? तहां वह कहै है, ममयमारविषय ऐसा कथा है—

[सवराधिकार कलश]

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।

तावथावत्पराच्छ्रुत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठित ॥५१॥१॥७

याका अर्थ यह—भेदविज्ञान तावत् निम्नतर भावना, यावत् परत छूटे ज्ञान है सो ज्ञानविषय स्थित होय। ताते भेद विज्ञान छूटे परका जानना भिटि जाय है। कल आपहीको आप जान्या करै है।

सो यहा ता यहु फह्या है—पूरा आपा परका एक जानै था, पीछे जुदा जाननेको—भेदविज्ञानको तावत् भावना ही योग्य है, यावत् ज्ञान पररूपको भिन्न जानि अपन ज्ञानस्वरूपहीविषय निश्चित होय। पीछे भेदविज्ञान करनेका प्रयोजन रखा नाहीं।

स्वयमेव परको पररूप आपको आपरूप जाया करे है। ऐसा नहीं, जो परद्रव्यका जानना ही मिटि जाय है। ताते परद्रव्यका जानना व स्वद्रव्यका विशेष जानने का नाम विकल्प नहीं है। तो कैसे है ? सो कहिये है—राग द्वेषके वशते किमी श्रेयके जाननेते छुडावना ऐम बारबार उपयोगका भ्रमावना, ताका नाम विकल्प है। बहुति जहां धीतरागरूप होय जाको जानै है, ताका यथार्थ जानै है। अन्य अ य जयके जाननेके अर्थि उपयोगको नाही भ्रमावै है। तहा निर्विकल्पदशा जाननी।

यहां कोऊ कहे—उग्रमथका उपयोग तो नाना शं यविषे भ्रमे ही भ्रमे। तहा निर्विकल्पता कैम समवे है ?

ताका उत्तर—जेत काल एरु जाननेरूप रहे, तावत् निर्विकल्पनाम पावे। सिद्धान्तविषे ध्यानका लक्षण ऐना ही किया है।
 “एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम् ॐ”

[तत्त्वा सू ९—२७]

एकका मूर्य चितवन होय अर अन्य चिंता रुकै, ताका नाम ध्यान है। सर्वार्थसिद्धि धरको टीकाविषे यहु विशेष कथा है—जो सर्व चिंता रुकनेका नाम ध्यान होय, तो अचेतनपना होय जाय। बहुति ऐसी भी विवक्षा है—जो सतान अपेक्षा नानाशेषका भी जानना होय। परन्तु यावत् धीतरागता

* उग्रम सहननस्य कामचितानिरोधो ध्यानमान्तमुहृतात्' ऐसा पूरा सूत्र है।

रहै, रागादिकरुि आप उपयोगकों अमाधै नाहीं, तावत् निर्विकल्पदशा कहिए है ।

बहुरि वह कहै ऐमं है, तौ परद्रव्यत छुडाय स्वरूपविषै उपयोग लगानेका उपदेश काहेको दिया है ?

तारा समाधान—जो शुभ अशुभ भावनिकों कारण पर द्रव्य हैं, तिनविषै उपयोग लगे जिनके राग द्वेष होइ आये है, अर स्वरूपचितवन करै तौ राग द्वेष घटै ह, एस नीचली अव स्थानरे जोवनिकों पूर्वोक्त उपदेश है । जैसे कोऊ स्त्री विकार भावकरि काहुँके घर जाय थी, ताको मने करी—परघर मति जाय, घरमें बैठि रहौ। बहुरि जो स्त्री निर्विकार भावकरिकाहुँके घर जाय, यथायोग्य प्रवर्त्तै तौ किलू दोष है नाही । तैसे उप योगरूप परणति रागद्वेषभावकरि परद्रव्यनिविषै प्रवर्त्तै थी, ताको मने करी परद्रव्यनिविषै मति प्रवर्त्तै, स्वरूपविषै मग्न रहौ। बहुरि जो उपयोगरूप परणति वीतरागभावकरि परद्रव्यको जानि यथायोग्य प्रवर्त्तै, तौ किलू दोष है नाही ।

बहुरि वह कहै है—ऐसं है, तौ महागुनि परिग्रहादिक चितवनका त्याग काहेको करै हैं ।

तारा समाधान—जैसे विकाररहित स्त्री कुशीलके कारण परधरनिका त्याग करै, तैसे वीतरागपरणति राग द्वेषके कारण परद्रव्यनिका त्याग करै है, बहुरि जे व्यभिचारके कारण नाहीं,

ऐसे परधर जानका त्याग है नाही । तैसे ज राग द्वेषको कारण नाही ऐसे परद्रव्य जाननेका त्याग है नाही ।

बहुरि यह कहै ह—जैस जो स्त्री प्रयोजन जानि पिता दिकरुं घरि जायतौ जायो, बिना प्रयोजन जिस तिसरुं घर जाना तौ योग्य नाही । तैस परणतिकी प्रयोजन जानि सप्ततत्त्वनिका विचार करना । बिना प्रयोजन गुणस्थानादिकका विचार करना योग्य नाहीं ।

ताका समाधान—जैस स्त्री प्रयोजन जानि पितादिक वा मित्रादिकके भी घर जाय, तैस परणति तत्त्वनिका विशेष जाननका कारणगुणस्थानादिक रम्मादिकरुं भी जान । बहुरि यहा ऐसा जानना जैस शीलवती स्त्री उद्यमकरि तौ त्रिटपुरुष निकै स्थान न जाय, जो परबश तहां जाना बनि जाय, तहां कुशोल न सेवै, तौ स्त्री शीलवती ही है । तैस बीतराग परणति उपापकरि तौ रागादिकके कारण परद्रव्यनिर्निर्प न लागै । जो स्वयमेव तिनका जानना होय जाय तहां रागादि न करै तौ परणति शुद्ध ही है, तातै स्त्री आदिकी परीपह मुनीनके होय, तिनिको जान ही नाही, अपने स्वरूपहीका जानना रहै है, ऐसा मानना मिथ्या है । उनको जानै तौ है, परन्तु रागादिक नाहीं करै है । या प्रकार परद्रव्यको जानत भी बीतरागभाव हो है, ऐसा श्रद्धान करना ।

बहुरि यह कहै—ऐसै है तौ शास्त्रविणै ऐसै कैसे कथा है,

जो आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य है।

ताका समाधान—अनादित परद्रव्यविषय आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण था, ताके छुटानेकी यह उपदेश है। आपही विषय आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण मण परद्रव्यविषय रागादि पादिपरणति करनेका श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरण मिटि जाय, तब सम्यग्दर्शनादि हो है। जो परद्रव्यका परद्रव्यरूप श्रद्धानादि करनेसे सम्यग्दर्शनादि न होत होय, तो केरलीके भी तिनका अमार होय। जहाँ परद्रव्यको घुरा जानना, निजद्रव्यको मला जानना तहाँतो राग द्वेष सहच हा भया। जहाँ आपको आपरूप परको पररूप यथार्थ जान्या करे, तैसे ही श्रद्धानादि रूप प्रवर्तते, तब ही सम्यग्दर्शनादि हो है। ऐसे जानना। ताते बहुत कदा कदिए, जैसे रागादि मिटावनेका श्रद्धान होय, सो ही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुत जैसे रागादि मिटावनेका जानना होय, सो ही जानना सम्यग्ज्ञान है। बहुत जैसे रागादि मिटे, सो ही आचरण सम्यक्चारित्र्य है। एसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है। या प्रसार निदचयनयका आमास लिए एकान्तपक्षके धारो जेनामास तिनके मिथ्यात्वका निरूपन किया।

[एकान्तपक्षी व्यवहारावलम्बी जेनाभास]

अत्र व्यवहाराभास पक्षक जेनाभासनिर्क मिथ्यात्वका निरूपण कीजिए है—जिन आगनायके जहाँ व्यवहारकी घुरपताकरि

उपदेश है, ताका मानि बाधसाधनादिकहीका श्रद्धानादिक करै है, तिनके सर्व बर्मके अग अन्यधारूप होय मिथ्यामावकों प्राप्त होय हे मो विशेष कहिए हैं । यहां ऐसा जानि लेना— यत्रहार धर्मकी प्रवृत्ति पुण्यवध होय है, तर्त पापप्रवृत्ति अपेक्षा तौ याका निषेध है नाही । परन्तु इहां जो जीव यत्रहार प्रवृत्तिही- करि सन्तुष्ट हाय, सांचा मोक्षमार्गविषे उद्यमी न होय है, ताका मोक्षमार्गविषे मन्मुरा करनेका तिस शुभरूप मिथ्या प्रवृत्तिका भी निषधरूप निरूपण कीजिए है । जो यह कथन कीजिए है, ताका सुनि जो शुभप्रवृत्ति छोडि अशुभविष प्रवृत्ति करीगे, तौ तुम्हारा नुरा होगा, और जो यथाथ श्रद्धानकरि मोक्षमार्गविषे प्रयत्नो गे, तौ तुम्हारा मला होगा । जैसे कोऊ रोगी निर्गुण औषधिका निषेध सुनि औषधि साधन छोडि कुपथ्य करेगा, तौ वह मरेगा, वैद्यका कठू दोष है नाहीं । तैसे ही कोऊ समारी पुण्यरूप धर्मका निषध सुनि धर्मसाधन छोडि विषय कषायरूप प्रयत्नो गा तौ वह ही नरकादिविषे दु रा पावेगा । उपदेश दाताका तौ दोष नाहीं । उपदेश देनेवालेका तौ अभिप्राय धसय श्रद्धानादि छुडाय मोक्षमार्गविषे लगावनेका जानना । सो ऐसा अभिप्रायत इहां निरूपण कीजिए है ।

[कुल अपेक्षा धर्म विचार]

इहां कोई जीव तौ कुलक्रमकरि ही जैनी है, जैनधर्मका स्वरूप जानते नाही । परन्तु कुलविषे जैमी प्रवृत्ति चली आई,

तैम प्रवर्त्त" है । मो जैसे अन्यमती अपने कुलधर्मविषे प्रवर्त्त
 है, तैम ही यहू प्रवर्त्त" है । जो कुलधर्महीत धर्म होय, तो मुसल-
 मान आदि सर्व ही धर्मात्मा हीय । जैनधर्मका प्रियण कहा
 रखा ? सोई क्या है—

लोयस्मि रायणीर्दं णाय कुलकस्मि कडुयावि ।
 किं पुण तिलोयपटुणो जिणदधम्माहिगारस्मि ॥१॥

[उप० सि १० भा० ७]

याका अर्थ—लोकविषे यहू राजनीति है—फदाविन कुलधर्म-
 करि न्याय नार्ही होय है । जाका कुल चार होय, तासो चोरी
 करता पकरे, तो याका कुलधर्म जानि छाडे नाहा, दड ही द ।
 तो त्रिलोकप्रभु जिनेन्द्रदेवके धर्ममा अधिभारविषे कहा कुलधर्म
 अनुभारि न्याय समरे । बहुरि जो पिता दरिद्रो होय आप धन-
 वान होय, तहां तो कुलधर्म विचारि आप दरिद्री रहता ही
 नाही । तो धर्मविषे कुलका कहा प्रयोजन है बहुरि पिता नरकि
 जाय पुत्र मोक्ष जाय, तहां कुलधर्म कैसे रखा ? जो कुल ऊपरि
 दृष्टि होय, तो पुत्र भी नरकगामी होय । ताते धर्मविषे कुलधर्म-
 का मिल्ह प्रयोजन नाही । शास्त्रनिरा अर्थ विचारि जा काल-
 दोष ते जिनधर्मविषे भी पापी पुण्यनिकरि कदेव कुगुरु कुधर्म
 सेवनादिरूप वा विषयक्यायपोषणादिरूप विपरीत प्रवृत्ति चलाइ
 होइ, ताका त्याग करि जिनआज्ञा अनुमारी प्रवर्तना योग्य है ।

इहाँ कोऊ कहै—परपरा छोडि नवीन मार्ग विष प्रवर्तना योग्य नाहीं । ताका कहिए है—

जौ अपनी बुद्धिकरि नवीन मार्ग पकरै, तौ युक्त नाहीं । जो परपरा अनादिनिघन जैनधमका स्वरूप शास्त्रनिषिर्ष लिख्या है, ताकी प्रवृत्ति मेदि बीचिम पापीपुरुषा अन्यथा प्रवृत्ति चलाई, तौ ताका परपरायमार्ग कैस कहिए । बहुरि ताका छोडि पुरातन जैनशास्त्रनिषिर्ष जैमा धर्म लिख्या था, तैस प्रवर्त, तौ ताका नवीन मार्ग कैस कहिए । बहुरि जो कुलत्रिष जैसे जिनदेवकी आज्ञा है, तैस ही धर्मकी प्रवृत्ति है, तौ आपको भी तैस ही प्रवर्तना योग्य है । परन्तु ताका कुलाचार न जानना, धर्म जानि ताके स्वरूप फलादिकमा निश्चय करि अगीकार करना । जो साचा भी धमको कुलाचार जानि प्रवर्त है, तौ वाका धमात्मा न कहिए । जात सय कुलके उस आचरणको छोडे तौ आर भी छोडि दे । बहुरि जा वह आचरण करै है, सो कुलका भयकरि करै है । किछु धर्मनुद्विस्त नाहीं करै है, तात वह धमात्मा नाहीं । तात विवाहादि कुलसन्धी कार्यनिषिर्ष तौ कुलक्रमका विचार करना और धमसन्धी कार्यनिषिर्ष कुलका विचार न करना । जैस धर्ममार्ग साचा है, तैस प्रवर्तना योग्य है ।

[परीक्षा रहित आज्ञानुसारी जैनत्वका प्रतिषेध]

बहुरि येई आज्ञा अनुसारि जैनी हो हैं । जैस शास्त्रविष आता है, तैस माने हैं । पर तु आज्ञाकी परीक्षा —

सो आज्ञा ही मानना धर्म होय, तो सर्व मतवाले अपने २ शास्त्र की आज्ञा मानि घमात्मा होय । तार्ते परीक्षाकरि जिनवचननिकों सत्यपनो पहिचानि जिनआज्ञा माननी योग्य है । बिना परीक्षा किए सत्य असत्यका निर्णय कैसे होय ? अर बिना निर्णय किए जैम अन्यमती अपने २ शास्त्रनिकी आज्ञा माने है, तैसे याने जैनशास्त्रनिकी आज्ञा मानी । यहु तो पक्षरुति आधा मानना है ।

कोऊ कहै—शास्त्रविषे दश प्रकार सम्यक्त्वविषे आज्ञा-सम्यक्त्व कथा है, वा आज्ञाविचयधर्मध्यानका भेद कथा है, वा निःशक्ति अगविषे जिनवचनविषे सशय करना निषेध्या है, सो कैसे है ?

ताजा मभाधान—शास्त्रनिषेध कथन केई तो ऐसे हैं, जिनकी प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि परीक्षा करि सकिण है । बहुति केई कथन ऐसे हैं, जो प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं । तार्ते आज्ञाहीकरि प्रमाण होय हैं । तहां नाना शास्त्रनिषेध जो कथन समान होय, तिनकी तौ परीक्षा करनेका प्रयोजन ही नाही । बहुति जो कथन परस्परविरुद्ध होइ, तिनविषे जो कथन प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होय, तिनकी तौ परीक्षा करनी । तहां जिन शास्त्रके कथनकी प्रमाणता ठहरै, तिनि शास्त्रविषे जो प्रत्यक्ष अनुमानगोचर नाही, ऐसे कथन किए होय, तिनकी भी प्रमाणता करनी । बहुति जिनि शास्त्रनिके कथनकी प्रमाणता न ठहरै, तिनके सर्व हू कथनकी अप्रमाणता माननी ।

इहां कोऊ कहै—परीक्षा किए काई कथन कोई शास्त्रविषे प्रमाण मानै, कोई कथन कोई शास्त्रविषे अप्रमाण मानै तौ कहा करिए !

ताका समाधान—नो आप्तके भासे शास्त्र हैं, तिनविषे कोई ही कथन प्रमाण विरुद्ध न होय । जाते क तौ जानयना ही न होय, ऊँ गगद्वेष होय, तौ असत्य कहै । सो आप्त ऐसा होय नाहीं, ताते परीक्षा नीकी नाहीं करी है, ताते भ्रम है ।

बहुरि वह कहै है—छत्रस्थके अन्यथा परीक्षा होय जाय, तौ कहा करे !

ताका समाधान—माची झूठी दोऊ वस्तुनिकों मीढे अर प्रमाद छोडि परीक्षा किए तौ माची ही परीक्षा होय । नहां पक्षशतरुति नीके परीक्षा न करे, तहां ही अन्यथा परीक्षा हो है ।

बहुरि वह कहै है, जो शास्त्रानिविषे परस्पर विरुद्ध कथन तौ थन कौन कौनका परीक्षा करिए ।

ताका समाधान—मोक्षमार्गविषे देव गुरु धर्म वा जीवादि तत्त्व वा ब्रह्ममोक्षमार्ग प्रयोजनभूत है, मो इनकी परीक्षा करि लैनी । जिन शास्त्रनिविषे ए मांच कहै, तिनकी मर्ब आज्ञा माननी । जिनविषे ए अन्यथा प्ररूपे, तिनकी आज्ञा न माननी । जैसे लोखविषे जो पुरूप प्रयोजनभूत कार्यनिविषे झूठ न बोलै, मो प्रयोजनरहितकार्यनिविषे ऊँ झूठ बोलैगा । तैसे जिन शास्त्रविषे प्रयोजनभूत देवादिकका स्वरूप अन्यथा न कहा,

तिमरिष्य प्रयोनन रहित द्वीप ममुद्रादिकका कथन अन्यथा कर्म होय ? जात देवादिकका कथन अन्यथा रिष्य वक्ताक रिष्य कपाय पोषे जांग हें ।

इहां प्रश्न—इवादिकका कथन तो अन्यथा रिष्यरूपायत किया तिन ही शास्त्रनिरिष्य अ य कथन अन्यथा काहेको किया ?

ताका समाधान—जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट होय जाय । जुदी पद्धति ठहरै नाही । तात घने कथन अन्यथा करनत जुदी पद्धति ठहरै । तहां तुच्छबुद्धिभ्रममें पडिनाय—यहु मा मत है । तात प्रयो-जनभूतका अ यथारनाका भेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घन किए । बहुरि प्रतीति अनावनेक अर्थि कोई र साचा भी कथन किया । परन्तु स्थाना होय मो भ्रम में परै नाही । प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षाकरि जहां साच भासै, तिस मतकी सर्व आना मानै, मा परीक्षा किए जैनमत ही साचा भासै है । जात याका वक्ता सवज्ञ वीतराग है, सो थुठ काहैको कहै एसे जिन आज्ञा मानै, सो साचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञासम्यक्त्व है । बहुरि तहां गकाग्र चिन्तवत होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धमध्यान है । जो एसे न मानिए अर बिना परीक्षा किए ही आज्ञा माने सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय जाय, सो जो द्र-पतिगी आज्ञा मानि मुनि भया, आनाअनुमारि

साधनकरि ग्रंथैयिक पर्यंत प्राप्त होय, तार्कै मिथ्यादृष्टिपना कर्म रखा ? तांतै किठु परीक्षाकरि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय है । लोकविष भी काई प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए है । बहुरि तै बया—जिनरचनविष सशय करनेतै सम्यक्त्वका शका नामा दोष हो है, सो 'न जानै यह कर्म है, ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहा शका नाम दोष हो है । बहुरि जा निर्णय करनेको विचार करते ही सम्यक्त्वको दोष लागै, तौ अष्टमहस्योक्ति आज्ञाप्रधानतै परीक्षाप्रधानको उत्तम काहेको रखा ? पृच्छना आदि स्वाध्यायके जग रूसै बहे । प्रमाण नयतै पदार्थनिष्ठा निर्णय करनेका उपदेश काहेको दिया । तांतै परीक्षाकरि आज्ञा माननी योग्य है । बहुरि केई पापी पुरुषा अपना कल्पित कथन क्रिया है अर तिनका जिनरचन ठहराया है, तिनका जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना । तहां भी प्रमाणादिकतै परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनतै विधि मिठाय वा ऐसै समवे है कि नाही, ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थको मिथ्या ही जानना । जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामै लिखनेवालेका नाम किसी साहूकारका धरया, तिस नामके भ्रमतै धनको ठिगायै, तौ दरिद्री ही होय । तैसै पापी आप ग्रथादि बनाय, तहा कत्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरया, तिस नामके भ्रमतै झूठा श्रद्धान करै, तौ मिथ्यादृष्टी ही होय ।

तिसर्विष प्रयोचन इति द्वीप समुद्रादिक्रमा कथन अन्यथा कर्म होय ? ज्ञाते देशादिक्रमा कथन अन्यथा क्रिया वक्तारै विषय प्रयाय पोष जाय है ।

इहां प्रश्न—त्यादिक्रमा कथन तो अन्यथा विषयरूपायत क्रिया तिन ही शास्त्रनिर्मिषे अथ कथन अन्यथा काहेको क्रिया ?

ताका समाधान—जो एरु ही कथन अन्यथा कहै, वाचा अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट होय जाय । जुनी पद्धति ठहरै नाहीं । ताते घने कथन अन्यथा करनते जुदी पद्धति ठहरै । तहां तुच्छबुद्धिभ्रममें पडिजाय—पहु भी मत है । ताते प्रयो जनभूतका अथथापनाका भेलेनेके अर्थि अप्रयोजनभूत मो अन्यथा कथन घने किए । बहुति प्रतीति अनायनेके अर्थि काई २ सांचा भी कथन क्रिया । परन्तु स्थाना होय सो भ्रम में परै नाहीं । प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षाकरि जहां माय भासै, तिम मतको सर आता मानै, सो परीक्षा किए जैनमत ही सांचा भासै है । ज्ञाते याका वक्ता सवा शीतराग है, सो पुठ वाहैको कहै एम जिन आशा मानै, सो सांचा श्रद्धान होय, ताका नाम आशामय्यक्य है । बहुति तहां एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आशाविचय धर्मध्यान है । जो जेस न मानिए अर बिना परीक्षा किए ही आशा माने सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय जाय, तो जो द्रव्यलिगी आता मानि सुनि मया, आत्माअनुमासि

साधनरि ग्रंथैयिक पर्यन्त प्राप्त होय, ताके मिथ्यादृष्टिपना
 कर्म रखा ! ताते किछु परीक्षारि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा
 धर्मध्यान होय है । लोकरुविष भी काई प्रकार परीक्षा भए ही
 पुरपका प्रताति कीनिए है । बहुरि त कहा—जिनरचनविषे
 सशय करनेतें सम्यक्त्वका शका नामा दोष हो है, मो 'न जानै
 यह कर्म है, ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तदा शका नाम दोष
 हो है । बहुरि जो निर्णय करनेको विचार करत ही सम्यक्त्वको
 दोष लागै, तो अष्टमहस्योरिषे आज्ञाप्रधानतें परीक्षाप्रधानको
 चम काहको कहा ! पृच्छना आदि स्वाध्यायके जग कर्म कहे।
 प्रमाण नयत पदार्थनिरा निर्णय करनेका उपदेश काहेको दिया।
 ता परीक्षाकरि आज्ञा माननी योग्य है । बहुरि केई पापी
 कथा अपना कल्पित कथन क्रिया है अर तिनका जिनरचन
 हराया है, तिनका जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना।
 हा भी प्रमाणादिकतें परीक्षारि वा परस्पर शास्त्रनत विधि
 मलाय वा एमै समव है कि नाहीं, एसा विचारकरि विरुद्ध
 र्थका मिथ्या ही जानना । जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामे
 छुनेवालका नाम किमी साहूकारका धरया, तिस नामके भ्रमतें
 नको ठिगारै, तो दरिद्री ही होय । जैसे पापी आप ग्रथादि
 नाय, तदा कर्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरया,
 तस नामक भ्रमतें झूठा श्रद्धान करै, तो मिथ्यादृष्टी
 होय ।

यहुरि यह कहै है—गोम्मटसारविषे १ ऐसा कथा है—सम्यग्दृष्टि जीव अज्ञानगुरुके निमित्तत झूठ भी थडान कर, तो आना माननेत सम्यग्दृष्टि ही होय है। सो यहु कथन कैय किया है ?

ताका उत्तर—ज प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं, सम्यग्दर्शनत चिन्ता निर्णय न होय सकै, तिनिकी अपेक्षा यहु कथन है। मूलभूत देव गुरु धर्मादि या तत्त्वादिक्का अन्यथा थडान भए, तो सर्वथा सम्यक्त्व रहै नाहीं, यहु निश्चय करना। तात चिन्ता परीना सिध केवल आनाहीकरि जैनी है, ते भी मिथ्या दृष्टि जानने। यहुरि कई परीना करि भी जैनी है, परन्तु मूल परीना नाहीं करै हैं। दया शील तर मयमादि क्रियानिकरि या पूजा प्रभावनादि शायनिकरि या अतिशय चमत्कारादिकरि वा जिनधर्मतें इष्ट प्राप्ति होनेपरि जिनमतको उत्तम जानि प्रीतयत होय जैनी होय है। सो अन्यमतविषे भी तो ए कार्य पाईए, तातें इनि लक्षणविषे श्रुति याप्ति पाईए है।

कोऊ कहै—जैस जिनधर्मविषे ए कार्य है, तैस अन्यमत-विषे नाही पाईए है। तातें अतिश्रुति नाही।

ताका समाधान—यहु तो सत्य है, ऐस ही है। परन्तु जैस तू दयादिक मानै है, तैस तो तू भी निरूपे है। परजीव-

१ सम्मादनी जीवो तत्रइष्ट पवमण सु सङ्घद ।

सद्दर्शिन असमावे तज्जाणमाणो गच्छयागा ॥ २७ ॥

निकी रक्षाका दया तू कहै, सोई बे कहै हँ ऐस ही अन्य जानन।
बहुरि वह कहै हँ—उनरुं ठीक नाहीं। कबहु दया प्ररूप,
कबहु हिंसा प्ररूप।

ताका उत्तर—तदा दयादिकका अशमात्र तौ आया।
तार्त अति पाप्मिपना इनि लक्षणनिरुं पाइए है। इनिकरि सांची
परीक्षा होय नाहीं। तौ कर्म होय। जिनधर्मविषं सम्यग्दर्शन-
ज्ञानचारित्रमोक्षमार्ग ब्रह्मा है। तहां सांचे देयादिकका वा जीवा-
दिकका श्रद्धान किए सम्यक्त्व होय, वा तिनिका जानें सम्य-
ग्ज्ञान होय, वा साचा रागादिक मिटें सम्यक्चारित्र होय, मा
इनिका स्वरूप जैसें जिनमतविषं निरूपण किया है, तैसें कहीं
निरूपण किया नाहीं। वा जैनीयिना अन्यमती ऐमा कार्य करि
सकते नाहीं। तार्त यहु जिनमतका सांचालक्षण है। इस लक्षणका
पहचानि जे परीक्षा करे, तेई श्रद्धानी है। इस बिना अन्य
प्रकारकरि परीक्षा करे हँ, ते मिथ्यादृष्टी ही रहै हँ।

बहुरि केई सगतिकरि जैनधर्म धारै हँ। कोई महान्पुस्तको
जिनधर्मविषं प्रवर्तता देखि आप भी प्रवर्त हँ। केई देखा दरी
जिनधर्मकी शुद्ध वा अशुद्ध क्रियानिविषं प्रवर्त हँ। इत्यादि
अनेरु प्रकारके जीव आप विचारकरि जिनधर्मना रहस्य नाहीं
पहचान हँ अर जैनी नाम धारै हँ त सर्ग मिथ्यादृष्टी ही
जाननें। इतना तो हँ, जिनमतविषं पापकी प्रवृत्तिविशय नहीं
होय सकै है अर पुण्यके निमित्त घने हँ। अर सांचा भा...

भी कारण तहां पनि रहै ह । ताँ ज गृन्हादिकरि भी जैनी हे, ते भा औरनित्त तौ भले ही ह ।

[आजीवकादि प्रयोजनार्थधर्मसाधनका प्रतिषेध]

बहुरि जे जीव कपटरि आजीवकाके अर्थि वा चढाईके अर्थि वा किठु विषयनपायमवधा प्रयोजनविचारि जैना हो हे, ते तौ पापा हो ह अति तीव्रकषाय भए एमी बुद्धि आर्य ह । उनका सुनसना भी कठिन ह । नैनधमे तौ मत्तारका नाशिर अर्थि सेइए ह । तारुकि जो ममारीक प्रयोजन साध्या चाहे, सो बडा अन्याय करै ह । ताँ ते तौ मिथ्यादृष्टि ह ही ।

इहां कोऊ कहै—दिसादिकरि जिन कार्यनिका करिण, ते काय धर्मसाधनकरि सिद्ध कीजिण, तौ सुरा फहा मया । दोऊ प्रयोजन सधे ।

ताँ कहिए ह—पापनाय अर धर्मकार्यका एक साधन किए पाप ही होय । जैसै काऊ धर्मका साधन चैत्यालय बनाय, तिसहीको स्त्रीसेवनादि पापनिम्ना भी साधन करै, तौ पापी ही होय । दिसादिकरि भोगादिकके अर्थि जुदा मन्दिर बनावै, तौ बनायो । परन्तु चैत्यालयविषे भोगादि करना युक्त नाहीं । वैसे धर्मका साधन पूजा शास्त्रादि कार्य ह, तिनहींको आली-विका आदि पापका भी साधन करै, तौ करौ परन्तु पूजादि कार्य-निविषे तौ अजीविका आदिका प्रयोजन विचारना युक्त नाहीं ।

इहां प्रश्न—जो ऐसं है तो मुनि भी धर्मसाधि परधर भोजन करै है वा साधमी साधमीका उपकार करै करावै है, सो कैसं वनै ?

तारा उत्तर—जो आप जौ किछु आजोविका आदिका प्रयोजन विचार धर्म नाहीं साधै है, आपका धमात्मा जानि केई स्वयमेव भोजन उपकारादि करै है, तौ किछु दाप है नाहीं बहुरि जा आप ही भाजनादिकका प्रयोजन विचारि धर्मसाधै है, तो पापी है ही जे विरागी होय, मुनिपनो जगीकार करै है, तिनिके भोजनादिकका प्रयोजन नाहीं कोई द तौ ल, नाहीं तौ समता राखै । सन्देशरूप होय नाहीं । बहुरि आप हितकर अर्थि धर्म साधै है । उपकार करवानेका अभिप्राय नाहीं है । आपके जाका त्याग नाहीं, ऐसा उपकार करावै । कोई साधमी स्वयमेव उपकार करै तौ करौ अर न करै तौ आपके किछु सन्देश होता नाहीं । सा ऐसं तौ योग्य है । अर आप ही आजोविका आदिका प्रयोजन विचारि वाह्य धर्मका साधन करै, जहां भोजनादिक उपकार कोई न करै, तहां सकुशकरै, याचना करै, उपाय करै, वा धर्मसाधनविषे शिथिल होय जाय, सो पापी ही जानना । ऐसं समारीक प्रयोजन लिए जे धर्म साध है, ते पापी भी हैं अर मिथ्यादृष्टी हैं हो । या प्रकार जिनमतवाले भी मिथ्यादृष्टि जाननें । अब इनके धर्मका साधन कैसं पाइए है, सो विशेष दिखाइए है—

निकी पहचानि नाहीं । अर यहाँ अपराध केता लागै है, गुण केता हो है, सो नफा टोटाका ज्ञान नाहीं, वा विधि-अविधिका ज्ञान नाहीं । बहुरि शास्त्राभ्यास करै है । तहाँ पदतिरूप प्रवर्तै है । जो वाचै है, तौ आँगनिका सुनाय द है । जो पठै है, तौ आप पढि जाय है । सुनै है, तौ कहै है सो सुनि ले है । जो शास्त्राभ्यासका प्रयोजन है, ताका आप अतरग विषे नाहीं अवधारै है । इत्यादि धर्मकार्यनिका धर्मका नाहीं पहचानै । केईके तौ कृत्रिम जेस बडे प्रवा, तसें हमका भी करना, अथवा और करै है, तमे हमका भी करना, वा एसें किए हमारा लोभादिकको विद्धि हागा, इत्यादि विचार लिए अभुनार्थ धमका साथै है । बहुरि केई जाव ऐसे है, जिनके किए तौ बुगदिरूप बुद्धि है, किछू धमबुद्धि भी है, ताते प्रोक्तप्रकार भी धर्मका साधन करै है अर किछू आगे कहिए है, तिम प्रकार करि अने परिणाम निका भी सुधारै है । मित्र नो पाए है । बहुरि केई धर्म बुद्धिकरि धर्म साथै है, परतु निश्चयधर्मका न जानै है । ताते अभुनार्थ रूप धर्मका साथै है । तहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्यो मोक्षमार्ग जानि तिनिका साधन करै है । तदा शास्त्रविषे दू गुरु धर्मकी प्रतीति लिए सम्यक्त्व जाना कहा है । ऐसी आज्ञा मानि अरहत देव निर्ग्रन्थगुरु जैनशास्त्र विना औरनिका नमस्कारादि कानेका त्याग किया है । परतु तिनिका

गुण अवगुणकी परीक्षा नाहीं करै हैं। अथवा परीक्षा भी करै है तो तत्त्वज्ञान पूर्वक मांची परीक्षा नाहीं करै है बाह्यलक्षणनिकरि परीक्षा करै हैं। ऐस प्रतीतिकरि सुनेव गुरु शास्त्रनिकी भक्तिविषै प्रवर्त्तै है।

[अरहतभक्तिका अन्यथा रूप]

तहां अरहत देव हैं, सो इद्रादिकरि पूज्य है, अनेक अतिशयसहित हैं, क्षुधादि दोपरहित है, शरीरकी सुदरताको धरै है, स्त्रीसगमादि रहित हैं, दिव्यध्वनिकरि उपदेश द हैं, केवल ज्ञानकरि लोकालोक जानै है, काम क्रोधादिक नष्ट किए हैं, इत्यादि विशेषण कहै है। तहां इतिविषै केई विशेषण पुद्गलके आश्रय, केई जीवके आश्रय हैं। तिनको भिन्न भिन्न नाहीं पहिचानै हैं। जैसे अममानजाताय मनुष्यादि पयायनिविषै जीव पुद्गलके विशेषणको भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है, तैसे यह असमान जातीय अरहतपर्यायविषै जीव पुद्गलके विशेषणनिकों भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है। चहुरि जे बाह्य विशेषण है, तिनको तौ जानि तिनकरि अरहतदेवको महतपनो विशेष मानै हैं। अर जे जीवके विशेषण है, तिनको यथावत् न जानि तिनको अरहतदेवको महतपनो आज्ञा अनुसार मानै है। अथवा अन्यथा मानै है। जातै यथावत् जीवका विशेषण जानै मिथ्यादृष्टा गहै नाहीं। चहुरि तिन अरहतनिको स्वर्गमोक्षका

दाता दीनदयाल अधमउधारक पतितपावन माने है सो अन्य-
 मतो कर्तृत्वबुद्धित ईश्वरको जर्म माने हैं, तसैं यहु अरहतको
 माने है ऐसा नाही जान है—फरतो अपने परिणामनिका लागे
 है, अरहतनिको निमित्त माने हैं, ताते उपचारकरि वे विशेषण
 समवे है । अपने परिणाम शुद्ध भए बिना अरहत हू स्वर्गमोक्षा
 दिका दाता नाही । बहुरि अरहतादिकके नामादिकते श्यानादिक
 स्वर्ग पाया । तहा नामादिकका ही अतिशय माने हैं । बिना
 परिणाम नाम लेनेवालोंकेभा स्वर्गकी प्राप्ति न होय, तो सुनने-
 वालेके कैम होय । श्यानादिकके नाम सुननेके निमित्तते मद-
 कपायरूप भाव भए हैं । तिनका फल स्वर्ग भया है । उपचारकरि
 नामहीकी मुग्धता करी है । बहुरि अरहतादिकके नाम पूजना-
 दिकते अनिष्ट मामग्रीका नाश इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति मानि
 रोगादि भेटनेके अर्थि या धनादिकी प्राप्ति के अर्थि नाम ले है
 । वा पूजनादि करे है । सो इष्ट अनिष्टके तो कारण पूर्वकर्मका
 उदय है । अरहत तो कर्ता है नाही । अरहतादिककी भक्तिरूप
 शुभापयोग परिणामनिते पूर्व पापका सक्रमणादिक हाय जाय
 है । ताते उपचारकरि अनिष्टका नाशको इष्टकी प्राप्तिको
 कारण अरहतादिककी भक्ति कहिए है । अर जे जीव पहलें ही
 मसारी प्रयोनन लिए भक्ति करे, ताके तो पापहीका अभिप्राय
 भया । काक्षा विचिकित्मारूप भाव भए तिनिकरि पूर्वपापका
 सक्रमणादि कैम होय ? उहुरि तिनका कार्यमिद्ध न भया ।

बहुतरि केई जीव भक्तिकी मुक्तिका कारण जानि तहां अति अनुरागी होय प्रवर्त्तै श्रद्धान भया । सो भक्ति ताँ रागरूप है । रागते प्रथ है । ताते मोक्षका कारण नाहीं । जब रागमा उदय आनै, तब भक्ति न करै, तो पापानुराग होय । ताते अगुम राग छोडनेकी ज्ञानी भक्ति बिषे प्रवर्त्तै है । वा मोक्षमागकी वह निमित्तमात्र भी जानै है । परन्तु यहाँ ही उपादेयपना मानि सतुष्ट न हो है । शुद्धोपयोगका उद्यमी रहै है । सो ही पचास्ति काय व्याग्याविषे बह्या ? है —

इय भक्ति केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति । तीत्ररागज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिपेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोपि भवति ॥

यात्रा अर्थ—युक्त भक्ति केवलभक्ति ही है प्रधान जारै ऐमा अवानीजीवक हो है । बहुतरि तीत्र रागज्वर भेटनेके अर्थि वा कुठिकाने रागनिपेधनेके अर्थि कदाचित् ज्ञानीरै भी हो है ।

तहां वह पूछै है ऐमै है, तो ज्ञानीतै अज्ञानीरै भक्तिकी विश्वता होती होगी ।

ताका उत्तर—यथार्थपनेकी अपक्षाती ज्ञानीरै सांची भक्ति

१ अथ हि स्थान ए यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति । उपरिजन-भूमिकायामल चास्पदस्यास्थानरागनिपेधार्थं तीत्ररागज्वरविनोदाथ वा कदाचित् ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥ गा १३६ ॥

है—अज्ञानीके नाहीं है। अर रागभायकी अपेक्षा अज्ञानीके श्रद्धानविष भी मुक्तिकारण जाननेत अति अनुराग है। ज्ञानीके श्रद्धानविष शुभप्रकारण जाननेतै तैसा अनुराग नाहीं है। बाध कदाचित् ज्ञानोके अनुराग घना हो है, कदाचित् अज्ञानीके हो है, ऐसा जानना। ऐस देवभक्तिका स्वरूप दिखाया।

[गुरुभक्तिका अन्यथा रूप]

अब गुरुभक्तिका स्वरूप कैसे हो है, सो कहिए है :—

कोई जीव आत्मानुमारी है। ते तौ ए जैनके माधु हैं, हमारे गुरु हैं, ताते इनिकी भक्ति करनी, ऐसै विचारि भक्ति करे हैं। बहुरि कोई जीव परीक्षा भी करे हैं। तहा ए मुनि दया पाले है, शील पाले है, धनादि नाहीं राखे हैं, उपवामादि तप करे है, क्षुधादि परीपह सहे हैं किमीसा क्रोधादि नाहीं करे हैं, उपदेश देय औरनिको धर्मविषे लगावे है, इत्यादि गुण विचारि तिनविषे भक्तिभाव करे है। सो ऐसे गुण तौ परमहमादिक अन्यमती है, तिनविषे वा जैनी मिथ्यादृष्टीनिविषे भी पाईए है। ताते इनिविषे अतिन्याप्तपनो है। इनिकरि साची परीक्षा होय नाहीं। बहुरि जिन गुणोको विचारै है, तिनविषे केई जीवाश्रित है, केई पुद्गलाश्रित है, तिनका विशेष न जानना, अममानजातीय मुनिपयापविषे एकव बुद्धितै मिथ्यादृष्टि ही रहे है। बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारिप्रती एकतारूप मोक्षमार्ग मोई

साचा लक्षण है। ताका पहिचान नाही। जातं यह पडिचानि भए मिथ्यादृष्टी रहता नाही। ऐसै मुनिनका सांचा स्वरूप न ही जान, तो सांचो भक्ति कस होय ? पुण्यपधका कारणभूत शुभक्रियारूप गुणनिका पहिचानि तिनकी सेवात अपना मला होना जानि तिनविष अनुरागी होय भक्ति करै है ऐसै गुरुभक्ति का स्वरूप कहा।

[शास्त्रभक्तिका अन्यथा रूप]

अब शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहिए है —

कई जीव तो यह केवली भगवानकी बानी ह, तातं केवली के पूज्य होतैंतें यह भी पूज्य है, ऐसा जानि भक्ति करै है। बहुरि कई ऐसै परीक्षा कर है—इनशास्त्रनिविष विरागता दया क्षमा शील सतोपादिकका निरूपण है, तातं ए उत्कृष्ट हैं, ऐसा जानि भक्ति करै है। सो ऐसा कथन तो अन्य शास्त्र वेदान्तिक तिनविष भी पाइए है। बहुरि इन शास्त्रनिविष त्रिलोकादिकका गम्भीर निरूपण है। तातं उत्कृष्टता जानि भक्ति करै है। मो इहा अनुमानादिकका तो प्रवेश नाही। सत्य असत्यका निर्णय करि महिमा कसै जानिए। तातं ऐसै सांची परीक्षा होय नाहीं। इहा अनेकांतरूप सांचा जीवादितत्वनिका निरूपण है। अर सांचा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखाया है। ताकरि जैनशास्त्रनिका उत्कृष्टता है। ताका नाहीं पहिचान है। जातं यह पहिचानि भए मिथ्यादृष्टि रहै नाही। ऐसै शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहा।

या प्रकार याँ देव गुरुशास्त्रकी प्रतीति भई, ताँ न्यव
 द्वारसम्पन्न भया मानै हैं। परन्तु उनका साचा स्वरूप भास्या
 नाहीं। ताँ प्रतीति भी साची भई नाहीं। साँची प्रतीतिना
 सम्यक्की प्राप्ति नाहीं। ताँ मिथ्यादृष्टी ही है। बहुरि
 शास्त्रविषे 'तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनम्' [तत्त्वा० सू० १३]
 ऐसा वचन कथा है। ताँ जैम शास्त्रनिविषे जीवादि तत्व लिख
 हैं, तँ आप सीखिले है। तहाँ उपयोग लगाने है। औरनिको
 उपदेश है, परन्तु तिन तत्त्वनिका भाव भामता नाहीं। अर इहाँ
 तिस वस्तुके भावहीका नाम तत्व कथा। मो भाव भाँसे विना
 तत्त्वार्थश्रद्धान जैम होय ? भावभामना कहा ? मो कहिए है:—

जैम कोऊ पुरुष चतुर होनेके अर्थि शास्त्रकरि स्वर ग्राम
 मूर्छना रागनिका रूप ताल तानकेभेद तिनिको सीखै है। परतु
 स्वरादिकका स्वरूप नाहीं पहिचानै हैं। स्वरूपपहिचानि भए
 विना अन्य स्वरादिकको अन्य स्वरादिकरूप मानै है वा सत्य भी
 मानै है, तो निर्णयकरि नाहीं मानै है। ताँ वाकै चतुरपनो
 होय नाहीं। तँ कोऊ जीव सम्यक्की होनेके अर्थि शास्त्रकरि
 जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूपको सीखै है। परन्तु तिनका स्वरूप-
 को नाहीं पहिचानै हैं। स्वरूप पहिचानै विना अन्य तत्त्वनिको
 अन्य तत्त्वरूप मानि ले हँ। वा सत्य भी मानै है, तो निर्णयकरि
 नाहीं मानै है। ताँ याँ सम्यक् होय नाहीं। बहुरि जैसे
 कोई शास्त्रादिपठ्या है, वान पठ्या है, जो

को पहिचान है, तो वह चतुर ही है। तसै शास्त्र पढ़्या है, वा न पढ़्या है जो जोगादिकका स्वरूप पहिचान है, तो वह सम्प-
गृह्यो ही है जैसे हिरण्य रत्न रागादिकका नाम न जानै है,
अर ताका स्वरूपको पहिचानै है तसै तुच्छबुद्धि जोगादिकका
नाम न जान है, अर तिनका स्वरूपको पहिचानै है। यहू मै
हो, यह पर है, ए भाव बुरे है, ए मले है, ऐसै स्वरूप पहिचानै
ताका नाम भाय भायना है। शिवभूति १ मुनि जीयादिकका
नाम न जानै था, अर "तुपमापभिन्न" ऐसा घोषने लगा, सो
यहु भिद्धातका शब्द धा नाहो परन्तु आपा परका भावरूप
ध्यान किया, तातै केवली भया। अर ग्यारह अगके पाठी
जीवादितत्त्विका विशेषभेद जानै, परन्तु भासै नाही, तातै
मिथ्यादृष्टी ही रहै हैं। अब याकै त-वथद्वान किम प्रकार हो
है, सो कहिए है—

जिनशास्त्रनिर्विष कहै जीवके त्रस स्थावरादिरूप वा गुण
स्थानमागणादिरूप भेदनिको जानै है, अर अजीवके पुद्गलादि
भेदनिको वा तिनके वर्णादि विशेषनिको जानै है। परन्तु
अध्यात्मशास्त्रनिर्विष भेदविज्ञानको कारणभूत वा वीतरागदश
होनेका कारणभूत जैसे निरूपण किया है, तसै न जानै हैं
चहुरि क्रिमो प्रसंगतें तसै भी जानना होय, तो शास्त्र अनुसा

जानि तौ ले है । परन्तु आपको आप जानि परका अश भी न मिलावना अर आपका अश भी परिषे न मिलावना, ऐमा सांचा अद्वान नाही करै है । जैसे अन्य मिथ्यादृष्टी निधारविना पर्याय-बुद्धिकरि जानपनाविषे वा वर्णादिविषे अहबुद्धि धारै है, तैसे यहू भी आत्माश्रित ज्ञानादिविषे वा शरीराश्रित उपदेश उप-वासादि क्रियानिविषे आपो मानै है बहुरि शास्त्रके अनुमार कबहू साची बात भी बनावै, परन्तु अतरग निर्धाररूप अद्वान नाहीं । ताते जैसे मतवाला माताको माता भी कहै, तो स्याना नाहीं । तसे याका मम्यक्ती न कहिए । बहुरि जैसे कोई औरहीकी बातें करता होय, तसे आत्माका कथन करै, परन्तु यहू आत्मा में हों, ऐसा भाव नाहीं भासे बहुरि जैसे कोई औरकू औगत भिन्न चतावता होय, तसे आत्मा शरीरकी भिन्नता प्ररूपे । परन्तु मैं इस शरीरदिकते भिन्न हों, ऐमा भाव भासे नाहीं । बहुरि पर्यायविषे जीव पुद्गलके परस्पर निमित्तते अनेक क्रिया हो है, तिनको दोय द्रयका मिलापकरि निपजो जानै । यहू जीवकी क्रिया है, ताका पुद्गल निमित्त है, यहू पुद्गलकी क्रिया है, ताका जीव निमित्त है, ऐमा भिन्न भिन्न भाव भासे नाहीं । इत्यादि भाव भासे विना जीव अजीवसा साचा अद्वानी न कहिए । ताते जीव अजीव जाननेका तौ यह ही प्रयोजन था, सो भया नाहीं । बहुरि आत्मयतत्वविषे ज हिंसादिरूप पापास्रव हैं, तिनको भेग जानै है ।

उपादेय मार्ग है । मो ए तौ दाऊ ही कर्मबधक कारण इति
उपादयपत्तो, मानतो, मोई मिथ्यादृष्टी है । मोही ममयमा
बधाधिकारविष कथा है ॥—

सर्व जीवनिर्क जीवन् मरण सुख दृ र अपने कर्मके नि
सर्ते हो है । जहां अय जीव अन्य जीवर् इन् कार्यनिका क
होय, सोई मिथ्याध्ययसाय बधका कारण है ? । तहा अ
जीवनिर्को जियारनेका वा सुखी करनेका अध्ययसाय होय,
तौ पुण्यबधका कारण है, अर मारनेका अध्ययसाय होय,
पापबधका कारण है । ऐस अहिंसावत् सत्यादिक तौ पुण्यबध
कारण है, अर हिंसावत् अमत्यादिक पापबधका कारण है
मर् मी मिथ्याध्ययसाय है, ते त्याज्य है । तार्त हिंसादिवत् अहिं
दिकको भी बधका कारण जानि हेय ही मानना । हिंसा
मारनेकी बुद्धि होय, मोवाका आयु पूरा हुवा बिना मर् ना

॥ समयसार गा० २५४ म २५६ ।

१-- मव सन्ध निम्न भवति स्वकीय

कर्मोदया मरण जाविन् दुःखसौख्यम् ।

अज्ञानमनदिह यत्त पर परस्य

बुधात्सुमान् मरण जीविन् दुःख सौख्यम् ॥ ६ ॥

अज्ञानमनदधियम्य परापरस्य

व्यथित मे मरण जाविन् दुःख सौख्यम् ।

कर्मोदयादृष्टिनिर्मेन विक्रीपवन्तः,

मिथ्यात्पो नियममात्मज्ञाना भवन्ति ॥ ७ ॥

अपनी द्वेषपरणतिकरि आप ही पाप बाँधे हैं । अहिंसाविषै रक्षाकरनेकी बुद्धि होय, सो बाका आयु अवशेषविना जाय नही, अपनी प्रशस्त रामपरणतिकरि आप ही पुण्य बाँधे हैं । एसै ए दोऊ हेय ह । जहां वीतराग होय दृष्टा ज्ञाता प्रवर्त, तहां निर्मल है । सो उपादेय है । सो ऐसी दशा न होई, तावत् प्रशस्त रागरूप प्रवर्त । परन्तु श्रद्धान तो ऐमा राखौ—यहु भी बधका कारण है—हेय है । श्रद्धानविषै याकों मोक्षमार्ग जानै मिथ्यादृष्टी ही है ।

बहुरि मिथ्यात्व अविरत कषाय योग ए आस्रवके भेद ह, तिनका बाधरूप तो मान, अतरगहन भावनिकी जातिकी पहि चान नही । अन्य देवादिकसेवनरूप गृहीतमिथ्यात्वका मिथ्यात्व जान, अर अनादि अगृहीतमिथ्यात्व है, ताका न पहिचान । बहुरि बाध तसस्थानरकी हिंसा वा इन्द्रिय मनके विषयनिषै प्रवृत्ति ताका अविरत जान । हिंसाविषै प्रमादपरणति मूल है, अर विषयसेवनविषै अभिलाष मूल है, ताका न अवलोक । बहुरि बाध क्रोधादि करना, ताका कषाय जान, अभिप्रायविषै रागद्वेष वसै ताका न पहिचान । बहुरि बाध चेष्टा होय, ताका योग जान, शक्तिभूत योगनिका न जान । ऐम आस्रवनिका स्वरूप अन्यथा जाने, बहुरि राग द्वेष मोहरूप जे आस्रवमात्र हैं, तिनका तो नाश करनेकी चिंता नही । अर बाह्यत्रिया वा बाह्य निमित्त भेटनेका उपाय राख, सो तिनके मूट आस्रव

नाहीं । द्रव्यलिङ्गीयुनि अन्य देवादिककी सेवा न करे है, दिमा
 वा विषयनिर्विषे न प्रवर्त्ते है, क्रोधादि न करे है, मन वचन
 कायको रोके है, तौ भी यार्के मिथ्यावादि च्यारों आस्रव पाईए
 है । बहुरि कपटकरि भी ए कार्य न करे है । कपटकरि करे, तौ
 ग्रं वेयरु पर्ये न कर्म पहुँच । ताँत जो उतरग अभिप्रायविषे
 मिथ्यात्वादिरूप रागादिभार है, सोहो आस्रव है । ताँको न
 पहिचाने, ताँत यार्के आस्रवतत्वका भी सत्य श्रद्धान नाहीं ।
 बहुरि वधनत्वविषे जे अशुभभावनिकरि नरकादिरूप पापका वध
 होय, ताँको तौ पुरा जाने अर शुभभावनिकरि देवादि रूप
 पुण्यका वध होय, ताँको मला जाने । मो सर्व ही जीवनिक
 दुखसामग्रीविषे द्वेष, सुखसामग्रीविषे राग पाईए है, सो ही यार्के
 राग द्वेष करनेका श्रद्धान भया । जैसा हम पर्यायसबधी सुखदुख-
 सामग्रीविषे राग द्वेष करना, तैसा ही आगामी पर्यायसबधी
 सुखदुखसामग्रीविषे राग द्वेष करना । बहुरि शुभअशुभभावनिकरि
 पुण्यपापका विशेष तौ अघाति कर्मनिर्विषे हो है । मो अघा-
 तिर्म आत्मगुणके घातक नाहीं । बहुरि शुभ अशुभ भावनि-
 विषे घातिकर्मनिका तौ निरतरवध होय ते मर्ष पापरूप ही है
 अर तेई आत्मगुणके घातक है, ताँत अशुद्ध भावनिकरि र्मरुध
 होय, तिसविषे भला पुरा जानना सोई मिथ्याश्रद्धान है । सो
 ऐसे श्रद्धानते वधका भी यार्के सत्यश्रद्धान नाहीं । बहुरि सवर-
 तत्वविषे अहिंसादिरूप शुभाश्रव भाव तिनको सवर जाने है । सो

एक कारणतै पुण्यवध भी माने अरसवर भी माने, सो बने नाहीं ।

[एक भक्तिभावसे आश्रव वध सम्बर निर्जराकी सिद्धि]

यहा प्रश्न—जो मुनिनिर्के एक काल एकमात्र हो है । तहां उनके वध भी हो है अर संवर निर्जरा भी हो है, सो कर्म है ?

ताका समाधान—वह भाव मिश्ररूप है । किछु वीतराग मया है किछु मराग रखा है । ज अश वीतराग भए तिनकरि सवर है अर ज अश सराग रहे, तिनकरि वध है । सा एकभावतै तो दोय कार्य बन, परन्तु एक प्रशस्तरागहातै पुण्यवध भी मानना अर सवर्गनिर्जरा भी मानना सो भ्रम है । मिश्रभावविषे भी बहु मरागता है, बहु विरागता है, ऐसी पहचानि सम्यग्दृष्टी-हीके होय । तातै अशेष मरागताको हय श्रद्धे है । मित्या-दृष्टीके ऐसी पहचानि नाहीं तातै सरागभाव विषे सवर्गका भ्रम-करि प्रशस्त रागरूप कार्यनि ही उपादेय श्रद्धे है । बहुविद्वान-विषे गुप्ति ममिति, धम, अनुप्रेक्षा, पर्णप जय च त्रि इनकरि सवर हो है, ऐसा कथा १ है । सा इमरी भा वधार्थ न श्रद्धे है । कैसै, सो कहिए हे —

वाह्य मन वचन कायका चेष्टा मेरे पारनिवृत्तवन न बरै
मौन धरै, गमनादि न करै, सो गुप्ति माने है सो यहा तो
विषे भक्ति आदिरूप प्रशस्तरागादि नानाविकल्प हो है

कायकी चष्टा आप रोकि राखी है, तहां शुभप्रवृत्ति है, अर प्रवृत्तिविषे गुप्तितो वने नाहीं । ताते धीतरागमात्र भए जहां मन बचन कायको चष्टा न हाय, सो ही सांची गुप्ति गुप्ति है । बहुरि परजीवनिकी रक्षाके अर्थ यत्नाचारप्रवृत्ति ताको समिति माने हैं । सो हिंसाके परिणामानते ती पाप हा है, अर रक्षा के परिणामानते सरर बहोगे, ती पुण्यबधका कारण कौन ठहरेगा । बहुरि एणसासमितिर्विष दोष टाले है । तहां रक्षाका प्रयोजन है नाहीं । ताते रक्षाहाके अर्थ समिति नाहीं है । ती समिति केमे हो है—धुनिनके किंचिन् राग भए गमनादि क्रिया हो है। तहां तिन क्रियानिविषे अति आसक्तताके अभावते प्रमाद रूप प्रवृत्ति न हो है । बहुरि और जीवनिका दुग्गी करि अपना गमनादि प्रयोजन न सावे है । ताते स्वयमेव ही दया पले है । केमे संचा समिति है । बहुरि रक्षादिकके भयते वा स्वर्गमोक्षकी चाहिते क्रोधादि न करे है, सो यहां क्रोधादिकरनेका अभिप्राय ती गया नाहीं । जेमे कोई राजादिकका भयते वा महत्तपनाका लोभते परभ्री न सेवे है, ती पाको त्यागी न कहिए । तसे ही यहु क्रोधादिका त्यागी नाहीं । ती केमे त्यागी होय । पदार्थ अनिष्ट इष्ट माम क्रोधादि हो है । जब तत्त्वज्ञानके अभ्यासते कोई इष्ट अनिष्ट न भासे, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक न उपजे, तब सांचा धर्म हा है । बहुरि अनित्यादि चिंतनते शरीरादिकको बुरा जानि इतकारी न जानि तिनते उदाम होना ताका

नाम अनुप्रज्ञा कहें हैं। सो यहू तो जैम कोउ मित्र था, तब उमरै राग था, पीछे जाका अत्रगुण दखि उदामीन मया, तैसें शरीरादिकरै राग था पीछे अनित्यत्वादि अत्रगुण अत्रलोकिक उदामीन मया। सो ऐसी उदामीनता तो द्वय रूप है। जहां जैमा अपना वा शरीरादिकका स्वरमात्र है, तैसा पहचानि भ्रमकों भेटि मला जानि रागन कराना, बुरा जानि द्वय न करना, ऐसी मांची उदामीनताई अर्थि यथार्थ अनित्यत्वादिक्का चित्तवन मोई सांची अनुप्रज्ञा है।

बहुरि क्षुधादिक भए तिनके नाशका उपाय न करना, ताकों परीपह सहना कहें हैं। सो उपाय तो न क्रिया, अर अतरग क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिले दुखी भया, रति आदिका कारण मिले सुखी भया, तो मो दुख सुखरूप परिणाम है, मोई आर्त्थ-ध्यान रौद्रध्यान है। ऐसे भावनिर्त सरर जैम होय ? तातै दुखका कारण मिले दुखी न होय, सुखका कारण मिले सुखी न होय, ए यत्नकरि तिनका जाननहाग ही रहै, माई सांची परीपहका सहना है।

बहुरि हिंसादि मारधयागका न्यागकों चारित्र मानें हैं। तहां महावतादिरूप शुभयोगकों उपादयपनकरि ग्रहण मानें हैं। सो तत्पर्ययप्रतिप आम्रय पदार्थका निरूपण करतें महावत अणु-प्रत भी आत्मरूप कहे हैं। ए उपादेय कर्म होय ? अर आत्मव तो यधका माधकहै, चारित्र मोधका माधक है तारै

रूप आसन्नभावनिर्को चारित्र्यपूर्णो समवै नाहीं । सकल कषाय रहित जो उदासीनभाव ताहीका नाम चारित्र्य है । जो चारित्र्य मोहके दशधाती स्पृष्टिकनिक उदयत महाभद्र प्रशस्त राग हो है, सो चारित्र्यका मूल है । याको छुटता न जानि याका त्याग न करै है, साध्ययोग ही का त्याग करै है । परन्तु जैसे कोई पुरुष कदमूलादि बहुत दोषोंक हरितकायका त्याग करै है, अरु केई हरितकायनिर्को भयै हैं । परन्तु ताको धर्म न मानै है । तैसे मुनि हिमादि तीव्रकषायरूप भावनिका त्याग करै है, अरु केई मदकषायरूप महाव्रतादिकों पालें हैं, परन्तु ताको मोक्षमार्ग न माने है ।

यदां प्रश्न—जो ऐसे है, तो चारित्र्यके तेरह भेदनिर्दिष्टे महाव्रतादि कैसे कहे हैं ?

ताका समाधान—यहु व्यग्रहारचारित्र्य कहा है । व्यग्रहार नाम उपचारका है । सो महाव्रतादि भण ही चातरागचारित्र्य हो है । ऐमा सन्नध जानि महाव्रतादिनिर्दिष्टे चारित्र्यका उपचार किया है । निश्चयकरि निःकषाय भाव है, सोई सांचा चारित्र्य है । या प्रकार सररके कारणनिको अन्यथा जानता सररका सांचा श्रद्धानी न हो है ।

बहुरि यहु अनशनादि तपतै निर्जरा मानै हैं । सो केवल वास्तव ही तो किए निर्जरा हाय नाहीं । वास्तव तो शुद्धापयोग बधानतेके अर्थि कीजिए है । शुद्धोपयोग निर्जराका कारण

है। तब उपचारकरि तपकों भी निर्जराका कारण कहा है। जो बस दुख सहना ही निर्जराका कारण होय, तौ तिर्य चादि भी भूख तृपादि सहै है।

तब कह कहै हैं व तौ पराधीन सहै है, स्वाधीनपने धर्म-रूप बुद्धिते उपवासादि तप करे, ताके निर्जरा हो है।

ताका समाधान—धर्मबुद्धिते बाध उपवासादिक तौ किए, बहुरि तदा उपयोग अशुभ शुभ शुद्धरूप के परिणम तैमें परिणमो। धर्म उपवासादि किए धनी निर्जरा होय, धोर किए धोरी निर्जरा होय। जो ऐसे नियम ठहरै, तौ उपवासादिक ही मुख्य निर्जराका कारण ठहरै। सो तौ बने नहीं। परिणाम दुष्ट मए उपवासादिकते निर्जरा होनी कैमें समरे? बहुरि जो कहिए-जैसा अशुभ शुभ शुद्धरूप उपयोग परिणम, ताके अनुसार बध निर्जरा है। तौ उपवासादि तप मुख्य निर्जराका कारण कैमें रखा? अशुभ शुभ परिणाम बधके कारण ठहरै, शुद्ध परिणाम निर्जराके कारण ठहरै।

यहां प्रश्न—जो सत्कार्यस्य विषे 'तपसा निर्जरा' [६-३] ऐमा कैस कहा है?

ताका समाधान—शास्त्रविषे 'इहानिरोधस्तप' कहा है। इच्छाका रोकना ताका नाम तप है। सो इच्छा मिटे उपयोग शुद्ध होय, तौ निर्जरा हो है। निर्जरा कहो है।

यहां कोऊ कहै, आहारादिरूप अशुभकी तौ इच्छा दूरि भए ही तप होय । परतु उपवामादिक वा प्रायश्चित्तादि शुभ कार्य हैं, तिनकी इच्छा तौ रहे ?

ताका समाधान—ज्ञानी जननिर्क उपवासादिकी इच्छा नाहीं है, एक शुद्धोपयोग की इच्छा है । उपवामादि किए शुद्धोपयोग बंध हैं, तात उपवासादि करै हैं । बहुरि जो उपवासादिकतें शरीरकी वा परिणामनिकी शिथिलताकरि शुद्धोपयोग शिथिल हाता जानै, तहां आहारादिक ग्रहै है । जो उपवामादिकहींतें सिद्धि होय, तौ अजितनाथादिक तेईस तीर्थकर दीक्षा लेय दोय उपवास ही करै धरते ? उनकी तौ शक्ति भी बहुत थी । परतु जैसे परिणाम भए तैसे चाय साधन करि एक बीतराग शुद्धोपयोगका अभ्यास किया ।

यहां प्रश्न—जो ऐसे हैं, तौ अनशनादिककी तपसखा कैसे भइ ?

ताका समाधान—इनिका बाह्यतप कहै हैं । सो बाह्यका अथा यहु, जो बाह्य औरनिका दीसै यहु तपस्वी है । बहुरि आप तौ फल जसा अतरंग परिणाम होगा तसा ही पावैगा । जातै परिणामशून्य शरीरकी क्रिया फलदाता नाहीं ।

बहुरि यहां प्रश्न—जो शास्त्रविपै तौ अकामनिर्जरा कही है । तहां पिना चाहि भुख तृपादि सहै निर्जरा हो है । तौ उपवासादिकरि कष्ट सहै कैसे निर्जरा न होय ?

ठाका समाधान—अकामनिजराविर्ष भी बाध निमित्त तौ बिना चाहि भूख तृपाका सहना मया है । अर तहां मदकपाय रूप भाव होय, तौ पापकी निर्जरा होय, देवादि पुण्यका बध होय । अर जो तीव्रकपाय मए भी कष्ट सहे पुण्यबध होय, तौ सर्व तिर्य चादिक दब ही होय । सो बर्न नाहीं । तैसे ही चाहि करि उपवामादि किए तहा भूख तृपादि कष्ट सहिए है । सो यहु बाध निमित्त है । यहां जैसा परिणाम होय, तैसा फल पावे है । जैसे अन्नको प्राण कहा । बहुरि ऐसे वायसाधन मए अतरङ्गतपकी वृद्धि हो है । ताते उपचारकरि इनको तप कहे हैं । जो बाध तप तौ करे अर अतरङ्ग तप न होय, तौ उपचारते भी बाको तपसज्ञा नाहीं । साई कहा है—

कपायविषयाहारत्यागो यत्र विधीयते ।

उपवास स विज्ञेय शेष लघनकषिदु ॥

जहां कपाय विषय आहारका त्याग कीजिए, सो उपवास जानना । अवशेषको लघन श्रीगुरु कहें हैं ।

यहां कहेगा, जो ऐसे है, तौ हम उपवासादि न करेंगे ?

ताको कहिए है—उपदेश तौ ऊचा बढनेको दीजिए है तू उलटा नीचा पडेगा, तौ हम कहा करेंगे । जो तू मानादिकते उपवासादि करे है, तौ करि, वा मति करे, किल मिद्धि नाहीं । अर जो बर्नबुद्धित आहारादिकका अनुराग छोडे है, तौ

राग छूट्या, तेता ही छूट्या । परन्तु इसहीको तप जानि इतने निर्जरा मानि सतुष्ट मति होहु । बहुरि अतरङ्ग तपनिविषै प्रायश्चित्त, विनय, वैद्याभृत्य, स्वाध्याय, त्याग, ध्यानरूप जो क्रिया ताविषै बाह्य प्रवर्तन सो तौ बाह्य तपवत् ही जानना जैमें अनशनादि बाह्य क्रिया हैं, तैसैं ए भी बाह्य क्रिया हैं । तातैं प्रायश्चित्तादि बाह्य साधन अतरङ्ग तप नाहीं हैं । ऐसा बाह्य प्रवर्तन होत, जो अतरङ्ग परिणामनिकी शुद्धता होय, ताका नाम अतरङ्ग तप जानना । तहां भो इतना विशय है बहुत शुद्धता मए शुद्धोपयोगरूप परिणति होइ, तहां तौ निर्जरा ही है, बध नाहीं हो है । अर स्तोक शुद्धता मए शुभोपयोगका भी अश रहै, तौ जेती शुद्धता भई ताकरि तौ निर्जरा है । अर जेता शुभ भाव है ताकरि प्रथ है । ऐसा मिश्रभाव युगपत् हो हैं, तहां बध व निररा दोऊ हो हैं ।

यहां कोऊ कहै, शुभ भावनितें पापकी निर्जरा हो है, पुण्यका बध हो है, शुद्ध भावनितें दोऊनिकी निर्जरा हो है, ऐसा क्यो न कही ?

ताका उत्तर—मोक्षमार्गविषै स्थितिका तौ घटना सर्व ही प्रकृतिनिका होय । तहां पुण्यपापका विशेष है ही नाहीं । अ अनुभागका घटना पुण्यप्रकृतिनिका शुद्धोपयोगत भी होत नाहीं । ऊपरि ऊपरि पुण्यप्रकृतिनिके अनुभागका तीव्र बध उदर हो है, थर पापप्रकृतिके परमाणु पलटि शुभप्रकृतिरूप होय ऐस

सक्रमण शुभ गुह्य दौल भाव होतें होय । तारें पूर्वोक्त नियम
 समवे नाही । विगुह्यताहीके अनुसारि नियम संबद्ध है । देखो,
 चतुर्थगुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास आर्मात्मिकादि कार्य करे,
 तहां भी निर्जरा नाही, यध भी घना होय । अरु अन्नगुणस्थान-
 वाला विषय सेवनादि कार्य करे तहां भी अन्न लुप्यति निर्जरा
 हुआ करे यध भी धोरा होय । बहुति अन्नगुणस्थानवाला उप-
 वासादि वा प्रायश्चित्तादि तप करे, तिस कालविषय भी वाकं निर्जरा
 होय तारें वास्तु प्रवृत्तिके अनुसारि निर्जरा होतें है । अतएव
 कपायशक्ति घट विगुह्यता भए निर्जरा होतें है । अतएव प्रकट
 स्वरूप आंग निरूपण करंगे, तहां अन्नगुणस्थानवाला अनशनादि
 क्रियाको तपसत्रा उपचारतें जाननी । अतएव इनकी व्यवहार
 तप कथा है । व्यवहार उपचारका एक बंध है । बहुति ऐसा
 साधनतें जो वीतरागभावरूप, विगुह्य होय, सो सांचा तप
 निर्जरा कारण जानना । यहां दृष्ट—अन्न धनको वा अन्नको
 प्राण कथा । सो धनतें अन्न खाए अन्न द्विष्ट प्राण पोषे जाय,
 तारें धन अन्नको प्राण कथा । इतें इत्यादि प्राणविकी
 न जानें, अरु इनहीको प्राण जादि अन्न करे, तो मरण ही होय ।
 तैम अनशनादिको वा प्रायश्चित्तादिको तप कथा
 शनादि साधनतें प्रायश्चित्तादिको प्रवर्त

२३१

तप पोष्या जाय । तातें उपचारकरि अनशनादिकों वा प्रायश्चित्त
त्तादिकों तप फट्या । कोई वीतरागभावरूप तपकों न जानै अर
इनिहीकों तप जानि सम्ह करै, तौ ससारहीमें भ्रम । बहुत कहा,
इतना समझि लेंना—निश्चय धर्मतौ वीतरागमात्र है । अन्य
नाना विशेष बाह्यमाधन अपेक्षा उपचारतें किए हैं, तिनकों
व्यग्रहारमात्र धर्मसत्ता जाननी । इम रहस्यकों न जानै, तातें
बाकै निर्जराका भी साधा श्रद्धान नार्ही है ।

बहुरि सिद्ध होना ताकी मोक्ष मानै है । बहुरि जन्म जरा
मरण रोग क्लेशादि दुख दूरि भण अनतज्ञान करि लोकालोकका
जानना भया, त्रिलोकपूज्यपना भया, इत्यादि रूपकरि ताकी
महिमा जानै है । सो सर्व जीवनिक् दुख दूर करनेकी वा ज्ञेय
जाननेकी वा पूज्य होनेकी चाहि है । इनिहीके अर्थ मोक्षकी
चाहि कीनी, तौ यात्रे और जीवनिका श्रद्धानतें कहा विशेषता
मई । बहुरि याकै ऐसा भी अभिप्राय है—स्वर्गविषे सुख है,
तिनिक् अनतगुणों मोक्षविषे सुख है । सो इस गुणकारविषे स्वर्ग
मोक्ष सुखकी एक जाति जानै है । तहां स्वर्गविषे तौ विषयादि
सामग्रीजनित सुख हो है, ताकी जाति याकों भामै है अर मोक्ष-
विषे विषयादि सामग्री है नाहीं, सो वहांका सुखकी जाति याकों
भामै तौ नाहीं, परन्तु स्वर्गत भी मोक्षकी उत्तम महापुरुष कहै
है, तातें यहु भी उत्तम ही मानै है । जैसें कौऊ गानका स्वरूप

न पहिचानै, परन्तु सर्व ममाके मराहै, तात आप भी सराहै है। तैसँ यह मोक्षको उचम मानै है।

• यहा वह कहै है—शास्त्रविषय भी तो इन्द्रादिकत अनतगुणा सुख सिद्धनिर्भर प्ररूप है ?

• ताका उत्तर—जैमे तीर्थ करके शरीरकी प्रभाकोँ छर्यप्रभातै कोट्या गुणी कही। तहा तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषय छर्यप्रभाको महिमा है, तात भी बहुत महिमा जना बनेको उपमात्कार कीजिए है। तैसँ सिद्धसुखकोँ इन्द्रादिसुखतै अनतगुणा कक्षा। तहा तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषय इन्द्रादिसुखको महिमा है, तात भी बहुत महिमा जनावनेकोँ उपमात्कार कीजिए है।

• बहुरि प्रश्न—नो सिद्धसुख अर इन्द्रादिसुखकी एक जाति वह जानै है ऐसा निश्चय तुम रैम किया ?

• ताका समाधान—जिम धर्मसाधनका फल स्वर्ग मानै है, तिस धर्मसाधनहीका फल मोक्ष मानै है। कोई जीव इन्द्रादिपद पावै, कोई मोक्ष पावै, तहा तिन दोऊनिर्के एक जाति धर्मका फल भया मानै। ऐसा तौ मानै, जा जाकेँ साधन धारा हो है, सो इन्द्रादिपद पावै है, जाकेँ सपूर्ण साधन होय, सो मोक्ष पावै है। परन्तु तहाँ धर्मकी जाति एक जानै है। सो जो कारणको एक जाति जानै, ताकोँ कार्यकी भी एक जातिका श्रद्धान् अवश्य होय। जातै कारणविशय भए ही काय विशय हो है।

यह निश्चय किया, चाकै अमिप्रायविषे इद्रादिसुख अर सिद्ध-
सुखकी एक जातिका भ्रदान है । चहुरि कर्मनिमित्ततें आत्मकै
औपाधिक भाव धे, तिनका अभाव होतें शुद्धस्वभावरूप केवल
आत्मा आप भया । जैसे परमाणु स्फूर्त विद्युत् शुद्ध हो है, तैसे
यह कर्मादिकतें मिनन होए शुद्ध हो है । विशेष इतना वह दोऊ
अस्थाविषे दुखी सुखी नाहीं, आत्मा अशुद्ध अस्थाविषे दुखी
था, अब ताके अभाव होनेतें निराकूलक्षण अनतसुखकी प्राप्ति
भई । चहुरि इद्रादिकनिर्क जो सुख है, सो कपायमात्रनिकरि
आकूलतारूप है । सो वह परमार्थतें दुखी ही है । तातें चाकी
याकी एकजाति नाहीं । चहुरि स्वर्गसुखका कारण प्रशस्तराग है,
मोक्षसुखका कारण वीतरामभाव है, तातें कारणविषे भी विशेष
है । सो एसा भाव यासो भामे नाहीं । तातें मोक्षका भी याके
सांचा भ्रदान नाहीं है । या प्रकार याकेसांचा तत्त्वभ्रदान नाहीं
है । इसही वास्तव समस्यसारविषे १ कथा है—“अमयके तत्व
भ्रदान भए भी मिथ्यादर्शन ही रहै है ।” या प्रवचनसारविषे २
कथा है—“आत्मज्ञानसून्य तत्त्वार्थभ्रदान कार्यकारी नाहीं ।”

चहुरि यह व्यवहारदृष्टिकरि सम्बन्धदर्शनके आठ अंग कहे

१ सद्ददि य पतेदि य रोचदि य तद्द पुणो य पासेदि ।

धम्म भोगणिमित्त ष दु सो कम्मवृत्तयणिमित्त ॥ २७५ ॥

२ अत आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञान-तत्त्वार्थ-भ्रदान सयत्नत्वयौगपशमप्य-
किंचित्करोगे ॥ ३ ३९ ॥

हैं, तिनिकों पाले है । पचीस दोष कहे हैं, तिनिकों टाले है । सवेगादिक गुण कहे हैं, तिनिकों धारै है । परतु जैसे बीज बोए बिना खेतका सब साधन किए भी अन्न होता नाहीं, तैसे सांचा तत्वश्रद्धान भए बिना सम्यक्त होता नाहीं । सो पचास्तिकाय-न्यायविषे जहा अतविषे व्यवहाराभासवालेका वर्णन किया है, वहां ऐसा ही कथन किया है । या प्रकार याके सम्यग्दर्शनके अर्थि साधन करत भी सम्यग्दर्शन न हो है ।

[सम्यग्ज्ञानका अन्यथा स्वरूप]

अब यह सम्यग्ज्ञानके अर्थि शास्त्रविषे शास्त्राभ्यास किए सम्यग्ज्ञान होना कहा है, ताते जो शास्त्राभ्यासविषे तत्पर रहै हैं, वहां सीखना मिखावना, यादि करना, वाचना, पढना आदि क्रियाविषे तो उपयोगको रमावे है । परन्तु वाके प्रयोजन उपरि दृष्टि नाहीं है । इस उपदेशविषे मुझको कार्यकारी कहा, सो अभिप्राय नाही । आप शास्त्राभ्यासकरि औरनिकों सवोघन देनेका अभिप्राय राखै है । घने जीव उपदेश मानै वहां मतुष्ट हो है । सो ज्ञानाभ्यास तो आपके अर्थि कीजिए है और प्रमग पाय परका भी भला होय तो परका भी भला करै । बहुरिकोई उपदेश न सुनै, तो मति सुनौ, आप काहेको निपाद कीजिए । शास्त्रार्थका भाव जानि आपका भला करना । बहुरि शास्त्राभ्यासविषे भी केई तो न्याकरण न्याय कान्य आदि

बहुत अभ्यास हैं। तो ए तौ लोरुविषे पडितता प्रकट करनेके कारण हैं। इनविषे आत्महितनिरूपण तौ है नाहीं इतिका तौ प्रयोजन इतना ही है। अपनी बुद्धि बहुत होय, तौ थोरा बहुत इनका अभ्यासकरि पीछे आत्महितके साधक शास्त्र तिनिका अभ्यास करना। जो बुद्धि थोरो होय, तौ आत्महितके साधक सुगम शास्त्र तिनहीका अभ्यास करे। ऐसा न करना, जो व्याकरणादिकका ही अभ्यास करत करत आयु पूरा होय जाय, अरु तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति न वर्न।

यहां कोऊ कहै—ऐसें है तौ व्याकरणादिकका अभ्यास न करना। ताको कहिए है—

तिनका अभ्यासविना महान् ग्रथनिका अर्थ खुलै नाहीं। ताते तिनका भी अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि यहां प्रश्न—महान् ग्रथ ऐसे क्यो किए, जिनका अर्थ व्याकरणादि विना न खुलै। भाषाकरि सुगमरूप हितोपदेश क्यो न लिखा। उनके किछु प्रयोजन तौ था नाहीं ?

ताका समाधान—भाषाविषे भी प्राकृत सस्कृतादिकके ही शब्द हैं। परन्तु अपभ्रंश लिए है। बहुरि देश देशनिविषे भाषा अन्य अन्य प्रकार है सो महत पुरुष शास्त्रनिविषे अपभ्रंश शब्द कैसें लिखे। बालक तोतला बोलै, तौ बडे तौ न बोलै। बहुरि एकदेशकी भाषारूप शास्त्र दूसरे देशविषे जाय, तौ तहां ताका अर्थ कैसें भासे। ताते प्राकृत सस्कृतादि शुद्ध शब्दरूप ग्रथ जोड।

बहुरि व्याकरण बिना शब्दका अर्थ यथावत् न भासै । न्याय-
बिना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न होय सकै । इत्यादि वचन
द्वारि वस्तुका स्वरूप निर्णय व्याकरणादि बिना नीक न होता
जानि तिनकी आमनाय अनुमार, कथन किया । भाषाविषे भी
तिनकी थोरी बहुत आमनाय आए ही उपदेश होय सक ह ।
तिनकी बहुत अम्नायत नीक निर्णय होय सकै है ।

बहुरि जो कहौगे—एम् है, तौ अब भाषारूप ग्रथ काहको
बनाईए है ?

ताका समाधान—कालदीपत जीवनिकी मद बुद्धि जानि
केई जीवनिके जता ज्ञान होगा, तेता ही होगा ऐसा अभिप्राय
त्रिचारि भाषाग्रथ कोजिए है । मो जे जीव व्याकरणादिकका
अभ्यास न करि सकै, तिनको ऐसे ग्रथनिकरि ही अभ्यास
करना । बहुरि ज जीवशब्दनिकी नानायुक्ति लिए अर्थ करनेको
ही व्याकरण अवगाहै है, वादादिकरि महत होनेको न्याय अत्र
गाहै है, चतुरपना प्रकट करनेके अर्थि कान्य अवगाहै है इत्यादि
लौकिक प्रयोजन लिए इनका अभ्यास करै है, ते धर्मात्मा
नाही । वन जेता थोरा बहुत अभ्यास इनका करि आत्महितके
अर्थि तत्त्वादिकका निर्णय करै है, मोई वमात्मा पडित जानना ।

बहुरि केई जीव पुण्य पापादिक फलके निरूपक पुराणादि
शास्त्र, वा पुण्य पापक्रियाके निरूपक आचारादि शास्त्र, वा
शुण्म्यान मार्गणा कर्मप्रकृति त्रिलोकादिकके निरूपक,

नुपयोगके शास्त्र तिनका अभ्यास करै हैं । सो जो इनिका प्रयो-
 जन आप न विचारै, तब तौ सुषाकासा ही पदना भया । बहुरि
 जो इनिका प्रयोजन विचारै है, तहाँ पापको घुरा जानना पुण्यको
 भला जानना, गुणस्थानादिकका स्वरूप जानि लेना, इनिका
 अभ्यास करैगे, तितना हमारा भला है; इत्यादि प्रयोजन विचा-
 र्या, सो इसतें इतना तौ हामी नरकादिक न होसी, स्वर्गादिक
 होसी, परन्तु मोक्षमार्गकी तौ प्राप्ति होय नाहीं । पहले सांचा
 तत्त्वज्ञान होय, तहाँ पोछे पुण्यपापका फलको समार जानै शुद्धो
 पयोगतें मोक्ष मानै, गुणस्थानादिरूप जीवका व्यवहार निरूपण
 जानै, इत्यादि जैसाका तैसा श्रद्धान करता गता इनिका अभ्यास
 करै, तौ सम्पन्नान होय । सो तत्त्वज्ञानको कारण अध्यामरूप
 द्रव्यानुपयोगके शास्त्र हैं । बहुरि केई जीव तिन शास्त्रनिका भी
 अभ्यास करै हैं । परन्तु तहाँ जैम लिग्या है, तैम आप निर्णय
 करि आपको आपरूप, परको पररूप, आस्रवादिक को आस्र
 वादिरूप न श्रद्धान करै हैं । सुखतें तौ पथावत् निरूपण ऐसा
 भी करै, जाके उपदेशतें और जीव मध्यगृष्टी होय जाय, परन्तु
 जैम लडका स्त्रीका स्वांगपरि ऐसा गान करै, जाको मुनतें
 अन्य पुरप स्त्री कामरूप होय जाय । परन्तु वह जैसँ मीर्या
 तैम कहै है, पाको कुछ भाव भासै नाहीं, तातें आप कामासक्त
 न हो है । तैसँ यहु जैम लिग्या, तैसँ उपदेश दे, परन्तु आप
 अनुभव नाहीं करै है । जो आपके श्रद्धान भया होता, तौ और

तत्त्वका अग्र और तत्त्वविषय न मिलावता, सो यार्क फल नाहीं, तातै सम्पद्धान होता नाहीं । ऐमें यहु ग्यारह अगपर्यंत पढ़ै, तौ मी भिद्धि होती नाहीं । सो समयमारादिविषय मिथ्यादृष्टीक ग्यारह अगका ज्ञान होना लिख्या है ।

यहां कौऊ कहै—ज्ञान तौ इतना हो है, परन्तु जैसे अमन्यसेनके श्रद्धानरहित वान मया, तैसें हो है ?

ताका समाधान—यह तौ पापी था, जाक हिंसादिकी प्रवृत्तिका भय नाहीं । परतु जो जीव ग्रैवेयिक आदि विषय जाय है, ताकै ऐमा ज्ञान हो है, सो तौ श्रद्धानरहित नाहीं बाक तौ ऐमा ही श्रद्धान है, ए ग्रन्थ सांचे है परतु तत्त्वश्रद्धान सांचा न मया । समयसारविषय एक ही जीवरक घर्मका श्रद्धान एकादशांगका ज्ञान महाव्रतादिकका पालना लिख्या है । प्रवचनसारविषय

१ मोक्षस्य अमदहता अमवियसतो दु खो अधीएज्ज ।

पाठो ण करेदि गुण असदहंतस्स णाणं तु ॥२७४॥

माक्ष हि न तत्त्वदम्य श्रद्धतो शुद्धज्ञानमयान्मज्ञानशून्यत्वात् । ततो ज्ञानमपि नासी भद्रतो ज्ञानमश्रद्धानस्यापाराधोकादर्शानं श्रुतमधीयानोऽपि श्रुताध्ययनगुणामावा न ज्ञानी स्यात् स क्लिप्त गुण श्रुताध्ययनस्य यद्विक्ल-
बस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञानं तच्च विविक्लवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्धानस्यामध्यस्य श्रुता-
ध्ययनन न विधातु श्रवणन नस्तस्य तद्गुणामावा, नतश्च ज्ञानश्रद्धानामावात्
सोऽज्ञानीति, प्रतिनियत ॥

२ परमागुणमार्ण वा सुजा देहादिणु षरस पुषा ।

विज्जादि जदि सो सिद्धि ण लुद्धि सव्वागमधरो वि ॥२७५॥

ऐसा लिखया है आगमनान एमा मया जाऊरि सर्वपदार्थनिको हस्तामलकवत् जान है । यह भी जान है इनिका जाननहारा मैं हों । परंतु मैं ज्ञानस्वरूप हों, एमा आपनों परद्रव्यत भिन्न केवल चतन्यद्रव्य नाहीं अनुभव है । तार्त जात्मज्ञानशून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नाहीं । या प्रकार सम्यग्ज्ञानके अर्थि जैन शास्त्रनिष्ठा अभ्यास करे हें, तों भी याँ सम्यग्ज्ञान नाहीं ।

[सम्यक्चारित्रका अन्यधारूप]

बहुरि इनिऊँ सम्यक् चारित्रके अर्थि कर्म प्रवृत्ति है, सो कहिए है—ग्राह्यक्रिया ऊपरि तों इनऊँ दृष्टि हें, अर परिणाम सुधरने विगमनेका विचार नाहीं । बहुरि जो परिणामनिका भी विचार होय, तों जैसा अपना परिणाम हात्ता टीस, तिनहीके ऊपरि दृष्टि रहै हें । परन्तु उन परिणामनिकी परपरा विचारें अभिप्रायविषे जो वासना है, ताको न विचारें है । अर फल लागै है, सो अभिप्रायविषे वासना है, ताका फल लागै है । मा इसका विशेष व्याख्यान आगे करेगे । तदा स्वरूप नीके भासैगा । ऐसी पहिचानि बिना ग्राह्य आचरणका ही उद्यम है तहां केई जीव तों कुलक्रमकरि ना देखादेखी वा क्रोध मान माया लोभादिकत आचरण आचरें है । सो इनिऊँ तों धर्मबुद्धि ही नाहीं । सम्यक्चारित्र कर्हात होय । ए जीव कोई तों भोले है वा कपायै,

होता नहीं। बहुरि केई जीव ऐसा मानै हैं, जो जाननेमें कहा है अर माननेमें कहा है, किछु करैगा तौ फल लागैगा। ऐसे विचार व्रत तप आदि क्रियाहीका उद्यमी रहै हैं अर तत्त्वज्ञानका उपाय न करै हैं। सो तत्त्वज्ञान बिना महाव्रतादिका आचरण भी मिथ्याचारिण ही नाम पावै है। अर तत्त्वज्ञान भए किछु भी व्रतादिक नहीं है, तौ भी असयतसम्यग्दृष्टी नाम पावै है तातें पहलें तत्त्वज्ञानका उपाय करना, पीछें कपाय घटावनेको पाषा साधन करना। सो ही योगीन्द्रदेवकृत श्रावकाचारविषय कक्षा है—

“दसणभूमिह बाहिरा, जिय वयरुख ण हुति।”

याका अर्थ—यहु सम्यग्दर्शनभूमिका बिना हे जीव इन्द्ररूपी वृक्ष न होय। भावार्थ—बिन जीवनिक तत्त्वज्ञान नकी, ते यथार्थ आचरण न आचरै हैं। सोई विशेष लिखाट्ट है—

केई जीव पहलें तौ बढी प्रतिज्ञा धरि बैठे क प्रसंग विषय कपायगामना मिटी नाहीं। तब जैसे जैसे प्रसंग ही क्रिया चाहै, तदा तिस प्रतिज्ञाकरि परिणाम भूति होई। जैसे बहुत उपवासकरि बैठे, पाछें पीडातें दुखी हुन सोईकरि काल गमावै, धर्मसाधन न करे। सो पहलें ही प्रसंग प्रसंग ही प्रतिज्ञा कपो न लीजिये। दुखा होनेमें काल काल ताका फल भला कैसे लागैगा। अरु प्रसंग प्रसंग काल

बड़ी प्रतिज्ञा करें हैं, मो अपनी शक्ति दाखि करें हैं । जैसे परिणाम घटते रहै, सा करै हैं, प्रमाद भी न होय, अर आइ लवा भी न उपजै । ऐसी प्रवृत्ति कारिजकारी जाननी । बहुत जिनकं घर्मऊपरि दृष्टि नाहीं, ते कबहु तौ पटा धर्म आचरै, कबहु अधिक स्वच्छन्द होय प्रवर्त । जैसे कोई धर्मपरिधिपे तौ बहुत उपगसादि करै, कोई धर्मपरिधिपे बारम्बार भोजनादि करै । सो धर्मबुद्धि होय, तौ यथायोग्य सत्र धर्मपरिधिपे यथायोग्य मयमादि धरै । बहुत कबहु तौ काई धर्मकार्यविधिपे बहुत धन खरचै, कबहु कोई धर्मकार्य आनि प्राप्त भया होय, तौ भी तहां थोरा भी धन न खरचै । सो धर्मबुद्धि होय, तौ यथाशक्ति यथा योग्य सत्र ही धर्मकार्यनिधिपे धन खरच्या करै । जैसे ही अन्य जानना । बहुत जिनकं सांचा धर्म साधन नाहीं, ते कोई क्रिया तौ बहुत बड़ी अगीकार करै अर कोई हीनक्रिया किया करै । जैसे धनादिकका तौ त्याग किया, अर चोरा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादि निषयनिधिपे विशेष प्रवर्त । बहुत कोई जामा पहरना, स्त्रीसेवन करना, इत्यादि कार्यनिका तौ त्यागकरि धर्मोत्पापना प्रकट करै । अर पीछ छोटे व्यपारादि कार्य करै तहां लोकनिघ पापत्रिपाविधिपे प्रवर्तै जैसे ही कोई क्रिया अति ऊंची, कोई क्रिया अति नीची करै । तहां लोकनिघ होय, धर्मकी हास्य करान । देखो अमुक धर्मात्मा ऐसे कार्य करै हैं । जैसे कोई पुरुष एक वस्त्र तौ अति उचम पहरे, एक वस्त्र अति हीन

पहरें, तौ हास्यही होय । तैम यहु हास्य पावै है । सांचा धर्मकी तौ यहु आम्नाय है, जता अपना रागादि दूरि भया हांय, तार्क अनुसार निम पदविषे जो धर्मक्रिया मभवे, सो मरु अगीकार करै । जो थोरा रागादि मिट्या होय, तौ नीचा ही पदविषे प्रवृत्त । परन्तु ऊचा पद धराय, नीची क्रिया न करै । •

यहां प्रश्न—चास्त्रीसेवनादिकका त्याग ऊपरिकी प्रतिमा विषे कया है, सो नीचली अवस्थायाला तिनका त्याग करै कि न करै । ताका समाधान—मरुथा तिनका त्याग नीचली अवस्थायाला कर सकता नाहीं । जोई दोष लागै, ताने उपरिकी प्रतिमाविषे त्याग कया है । नीचली अवस्थाविषे जिमप्रकार त्याग मभवे, तैमा नीचली अवस्थायाला भी करै । पर तु जिम नीचली अवस्थाविषे जो कार्य मभवे ही नाहीं ताका करना तौ कपायभावनिहीते हा है । जैम कोऊ सप्तपमन सेवे, स्वस्त्रीका त्याग करै, तौ कैम बने ? यद्यपि स्वस्त्रीका त्याग करना धर्म है, तथापि पहले सप्तन्यसनका त्याग होय, तब ही स्वस्त्रीका त्याग करना योग्य है । ऐम ही अन्य जानन । बहुरि सर्व प्रकार धर्मका न जानै, ऐमा जाय कोईधर्मका अगका मुख्यकरि अन्य धर्मनिका गौण करै है । जैम केई जीव दयाधर्मका मुख्यकरि पूजा प्रभावनादि कार्यका उत्थाप है, केई पूजा प्रभावनादि धर्मका मुख्यकरि हिंसादिकका भय न राखे हैं, केई तपकीसुरपताकरि आर्तघनानादिकरिंके भी उपनासादि करे वा आपका तपस्वी

यारा धर्म—मोक्षन पराट मुर ऐसे अतिदस्तर पचाग्नि तपनादि कार्य तिनकरि आप ही क्लेश करै है तौ करी । बहुति अन्य कई जीव महात्रत अर तपका मारकरि चिरकालपर तर्कीण हाते क्लेश करै है, तौ करी । परन्तु यहू सात्वात् मोक्षस्वरूप सरागरहित पद जा आप आप अनुभवमै आये, एमा ज्ञान स्वभास सो तौ ज्ञानगुणविना अन्य कोई मा प्रसारकरि पावनेको समर्थ नाहीं है । बहुतिपचास्तिकापविषे जहाँ अतविषे यवहारा-भामवालेका कथन किया है, तहाँ तेरह प्रकार चारित्र्य होत भी ताका मोक्षमार्गविषे निषध किया है । बहुति प्रवचनसारविषे आ-मज्ञानशून्य मयमभाव अकार्यकारी ग्या है । बहुति इनही ग्रन्थनिषेध वा अन्य परमात्मप्रकाशादि शास्त्रनिषेध इस प्रयो जन लिए जहाँ तहाँ निरूपण है । ताने पहल तन्वयान मण ही आचरण कार्यकारी है ।

यहा कोउ जानैगा, बाह्य तौ अणुमत्त महामतादि साधे है, अतरङ्ग परिणाम नाहीं वा स्वर्गादिकका बाँठाकरि साधे है, मो ऐसे साधे तौ पापबध होय । द्रव्यलिङ्गी मुनि ऊपरिम ग्रंथेयक-पर्यत जाय है । परावर्त्तनिषेध इकतीस सागर पर्यत देवपुकी प्राप्ति अनत बार हानी लिखी है मा ऐसे ऊचेपद तौ तब ही पाये, जब अतरङ्ग परिणामपूर्वक महात्रत पाएँ, महामदकपायी होय, इस लोक परलोकके भागादिककी चाहि न होय, केवल धर्मपुद्धित मोक्षामिलारी हुवा माधन साधे । ताने द्रव्यलिङ्गीके

स्थूल तौ अन्यथापनो है नाहीं, सूक्ष्म अन्यथापनो है सो सम्यग्दृष्टीको भासै है । अब इनके धर्मसाधन कैसे हैं, अर तामें अन्यथापनो कैसे है, सो कहिए हैं—

प्रथम तौ ससारविषे नरकादिकका दुख जानि स्वर्गादिविषे भी जन्म मरणादिका दुख जानि ससारते उदास होय, मोक्षको चाहै है । सो इनि दुखनिको तौ दुख सब ही जाने हैं, इन्द्र अहमिन्द्रादिक विषयानुरागत इ द्वियजनित सुख भोगवै हैं ताका भी दुख जानि निराकुल सुखअवस्थाको पहचानि मोक्ष चाहै है, सोई सम्यग्दृष्टि जानना । बहुरि विषयसुखादिकका फल नरकादिक है, शरीर अशुचि विनाशीक है—पोषणयोग्य नाहो—कुटवादिक म्यार्थके सगे हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका दोष विचारि तिनिका तौ त्याग करै है । व्रतादिकका फल स्वर्जमोक्ष है, तपश्चरणादि पवित्र अविनाशी फलके दाता हैं, तिनकरि शरीर सोखन योग्य है, देव गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका गुण विचारि तिनहीका अगीकार करै है । इत्यादि प्रकारकरि कोई परद्रव्यको बुरा जानि अनिष्ट श्रद्धै है । कोई परद्रव्यको भला जानि इष्ट श्रद्धै है । सो परद्रव्यविषे इष्ट अनिष्टरूप श्रद्धान सो मिथ्या है । बहुरि इसही श्रद्धानतें याके उदासीनता भी द्वेषबुद्धिरूप हो है । जातै काहूको बुरा जानना, ताहीका नाम द्वेष है ।

कोऊ कहैगा, सम्यग्दृष्टी भी तौ बुरा जानि परद्रव्यको त्यागै है ।

ताका समाधान—मध्यवृष्ट्या परद्रव्यनिकाँ पुरा न जान है। अपना रागभावकोँ पुरा जान है। आप रागभावकोँ छोड़ते तब ताका कारणका मो त्याग हो है। परतु विचारै कोई परद्रव्य तो भला पुरा है नाहीं।

कोऊ कहैगा, निमित्तमात्र तो है।

ताका उत्तर—परद्रव्य जोरावरी तो कोई पिगारता नाह, अपने सब विगारै तब यह भी चाद्यनिमित्त है। बहुरि चाद्यनिमित्तचिना भी भाव विगारै है। तातै नियमरूप निमित्त नाहीं। ऐमें परद्रव्यका तो दोष देखना मिथ्याभाव है। रागदिभाव ही पुरे हैं। सो धारै ऐसी समझि नाहीं। यह परद्रव्यनिकाँ दोष देखि तिन विषे हँ परतु उदासीनता करै है। सो उदासीनता तो राका नाम है, कोई ही परद्रव्यका दोष वा न भासै, तातै साहूकोँ पुरा भला न जानै। आपकोँ आप परतु कोँ परजान परतु क्लिष्ट भी प्रयोजन मेरा नाहीं, ऐसा म साक्षीभूत गै। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानीहीकेँ होय। यह उदासीन होय शास्त्रविषे व्यवहारचारित्र अणुनत महाम रूप कथा है, ताकोँ जगाकार करै है, एकदेश वा सर्वदेश हिस पापकोँ छोड़ै है, तिनकी चायगा अहिंसादि पुण्यरूप कार्य विषे प्रवर्त्तै हैं। बहुरि जैमें पर्यायाश्रित पापकार्यनिर्विषे कर्त्त पना मानै था तैमें ही अब पर्यायाश्रित पुण्यकार्यनिर्विषे कर्त्त अपना माननै लागै, ऐमें पर्यायाश्रित कार्यनिर्विषे अह

माननेकी समानता भई । जैमें मैं जीव मारो ह्य, मैं परिग्रहबोध
हो, इत्यादिरूप मानि थी, तैमेंही मैं जावनिकी रक्षा करी ह्य
मैं नम्र परिग्रहरहित ह्य, ऐसी मानि भई । मो पर्यायाधि
कार्यविषे अहबुद्धि है, मो ही मिथ्यादृष्टि है । मोई समयमा
विषे कथा है—

ये तु कर्त्तारमात्मान पश्यन्ति तमसावृता ॥
सामान्यजनवत्त्वेषा न मोक्षोपि मुमुक्षुता ॥१॥

[सर्व० वि० ग्लो० ३]

याका अर्थ—ये जीव मिथ्या अधिकार प्राप्त होते में
आपकी पर्यायाश्रित क्रियाका कर्त्ता माने हैं, ते जीव मोक्ष
मिलापी हैं, तीऊ तिनके जैसे अन्यमती सामान्य मनुष्यनि
मोक्ष न होय, तैमें मोक्ष न हों है । जाते कर्त्तापनाका अद्वानके
समानता है । चहुरि ऐमें आप कर्त्ता हाय श्रावधर्म या मुनि
धर्मकी क्रियाविषे मन वचन कायकी प्रवृत्ति निरतर राग्य है
जैमें उन क्रियानिविषे भग न होय, तैमें प्रवृत्त हैं । मो ऐसे भा
तौ मराग हैं । चाग्रि है, मो वीतरागभावरूप है । तात ऐ
मात्रनकी मोक्षमार्ग मानना मिथ्याबुद्धि है ।

यहा प्रश्ने—जो मराग वीतरागभेदकरि दोयप्रकार चारि
कथा है, मो कर्म है ?

ताका उत्तर—तैमें तदुल्लेख प्रकार है—एक तुषमद्वि

हैं एक तुपरहित हैं, वहां ऐसा जानना—तुप हैं मा तदुलका स्वरूप नाहीं । तदुलविषे दाप हैं । अर काइ स्याना तुपसहित तदुलकामग्रह करे था, ताका देखि कोई भाला तुपनिहीका तदुल मानि मग्रह करे, तौ वृथा म्वद खिन्न हो होय । तैसे चारित्र्य दोष प्रकार हैं एक मराग है एक बीतराग है । तहां ऐसा जानना—राग हैं, सो चारित्र्यका स्वरूप नाहीं । चारित्र्य विषे दाप है । अर केई स्यानी प्रशस्तरागसहित चारित्र्य धरें हैं । तिनको देखि कोई अज्ञानी प्रशस्तरागहीको चारित्र्य मानि मग्रह करे, तौ वृथा म्वेदखिन्न हो होय ।

यहां कौरु कहेंगा—पापक्रिया करत तीव्ररागादिक होते थे, अब इनि क्रियानिको करत मदराग भया । तारत जेता जश रागभाव घट्या, तितना अश तौ चारित्र्य बहो । जताअश राग रद्या, तेता जश राग कही गेय याके मरागचारित्र्य समये हैं ।

ताका समाधान—जा तजानपूर्वक गेय होय, तौ कहो हो तेम ही है । तत्वज्ञानचिना उत्कृष्ट आचरण होत भी अमयम ही नाम पायें हैं । जात रागभाव करनेका अभिप्राय नाहीं मिटै है । सोई दिग्याईए हैं—

द्रव्यलिंगो मुनि राज्यादिको छोडि निर्ग्रन्थ हो है, अठा ईम मूल गुणनिको पाल है, उग्रोय अनशनादि घनां तप करे है, लुघादिक भाईस परीपह सहै है, शरीरका खड खड भण भी व्याग्र न हो है, व्रतभंगक कारण अनेक मिलै, तौ भी दृढ रहै

है, कोईसेती क्रोध न करे है, ऐसा साधनका मान न करे है ऐसे साधनविषे कोई कपटाई नाही है, इस साधनकरि इस लोक पर लोकके विषयमुखकों न चाहै है। ऐसीयाकी दशा भई है। जो ऐसी दशा न होय, तो ग्रं वेयरपर्यंत कर्म पहुचै। परंतु याकों मिथ्यादृष्टी असपनी ही शास्त्रविषे कथा। सा ताका कारण यहु है—याके तत्त्वनिष्ठा श्रद्धान ज्ञान माचा भया नाही। पूर्वे वर्णन किया, तैसे तत्त्वनिष्ठा श्रद्धान ज्ञान भया है। तिस ही अभिप्रायते सरे साधन करे है। सो इन साधननिका अभिप्रायकी पर-पराकों विचार कपायनिका अभिप्राय आते हैं। सो कर्म ? सो सुनहु—यहु पापको कारण रागादिककों तो हेय जानि छोरे है, परंतु पुण्यका कारण प्रशस्तरागकों उपादेय माने है। ताके बधनेका उपाय करे है। सो प्रशस्तराग भी तो कपाय है। कपायकों उपादेय मान्या, तत्र कपाय करनेका ही श्रद्धान रखा। अप्रशस्त परद्रव्यनिषिषे राग करनेका अभिप्राय भया। किछु परद्रव्यनिषिषे साम्यभावरूप अभिप्राय न भया।

यहां प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टी भी तो प्रशस्तरागका उपाय राखे है।

ताका उत्तर यहु—जन्म काहूके बहुत दड होता था, सो बह थोरा दड देनेका उपाय राखे है। अर थोरा दड दिए हर्ष भी माने है। परंतु श्रद्धानविषे दड देना, अनिष्ट ही माने है। तैसे सम्यग्दृष्टीके पापरूप बहुत कपाय होना शा

रूप धारा कषायकरनेका उपाय राखें हैं । अर योरा कषाय मण
 हर्ष भा मानें है । परंतु श्रद्धानविषै कषायका हय ही मानें है ।
 बहुरि जैसे कोऊ बुमाईका कारण जानि यापारादिकका उपाय
 अनिआण हर्ष मानै है । तैसे द्रव्यलिङ्गी मोक्षका कारण जानि
 प्रशस्तरागका उपाय राखै हैं । उपाय अनिआण हर्ष मानें है ।
 ऐसे प्रशस्तरागका उपायविषै वा हर्षविषै समानता होत —भी
 सम्पद्यष्टीं तौ दडसमान मिध्यादृष्टिके व्यापारसमान श्रद्धान
 पाईण है । नाते अभिप्रायविषै विग्रह गया । बहुरि याके परीपह
 तपश्चरणादिकक निमित्तत दुख होय, ताका इलाज तौ न करै
 हैं, परंतु दुख बढे है । मो दुखका घटना रूपाय ही है । जहां
 बीतगगता हो है, तहां तौ जैसे अन्य ज्ञ यकों जान है, तैसे ही
 दुखका कारण ज्ञेयकों जानें है । मो ऐसी दशा याकी न हो है ।
 बहुरि उनका महे है, मो भी कषायका अभिप्रायव्य विचारतै
 सहै है । मो विचार ऐसा हो है—जो परब्रह्मपने नरकादिगत
 विषै ब्रह्म दुख सहै, ये परीपहादिकका दुख तौ योरा है । याकों
 स्वयं सहै स्वयं मोक्षसुखकी प्राप्ति हा है । जो इनका न सहिए
 अर विषयसुख सेईए, तौ नरकादिककी प्राप्ति होमी तहां ब्रह्म
 दुख हागा । इत्यादि विचारविषै परीपहनिविष अनिष्टबुद्धि रहै
 है । केवल नरकादिकके भयतै वा सुखके लोभतै तिनकों महे
 है । मो ए मत्र कषायभाव ही है । बहुरि ऐसा विचार हो है—
 न कम वाये ३, ते भोगेपिना उटते नाहीं । तात मोकों सहने

बाए । सो ऐसे विचारत कर्मफल चतनारूप प्रवर्तत है । बहुरि
 पर्यायदृष्टिते जो परीपहादिकरूप अवस्था हो है, ताको आपके
 भइ मानै है । द्रव्यदृष्टिते अपनी वा शरीरादिककी अवस्थाको
 भिन्न न पहिचानै है । ऐसै ही नानाप्रकार व्यवहार विचारत
 परीपहादिक सहे है । बहुरि यान राज्यादि विषयसामग्रीका त्याग
 किया है, वा इष्ट भोजनादिकका त्याग किया करै है । सो लर्म
 कोऊ दाहज्वरवाला वायु होनेके भयत शीतलवस्तु सेवनका त्याग
 करै है, परतु यान् शीतल वस्तुका सेवन रुचै, तावत वाँ दाहका
 अभाव न कहिए । तैसे रागसहित जा नरकादिकके भयत विषय-
 सेवनका त्याग करै है, परतु यान् विषयसेवन रुचै, तावत रागका
 अभाव न कहिए । बहुरि जैसे अमृतका आस्वादी देवको अन्य
 भोजन स्वयमेव न रुचै, तैसे स्वस्सका आस्वादिकरि विषयसेव-
 नकी रुचि याकै न हो है । या प्रकार फलादिककी अन्धा परी-
 पहादिकनादिको सुखका कारण जानै है, अर विषयसेवनादिको
 दुखका कारण जानै है । बहुरि तत्कालविषै परीपहादिकनादिकते
 दुखे ठाना मानै है । विषयसेवनादिकते सुख मानै है । बहुरि
 जिनते सुख दुख होना मानिए, तिनविषे इष्ट अनिष्ट, बुद्धिते
 रागद्वेष रूप अभिप्राय का अभाव दोष नाहा, बहुरि जहा राग
 द्वेष है, तहा चारित्र होय नाहा । ताने बहु द्रव्यलिगी विषय
 सेवन छोरि तपश्चरणादि करै है, तथापि अमयमी ही होन
 सिद्धांतविषे असपत देशमयत सम्यग्दृष्टीत श्री गुरु

रुद्रा है। जाते उनके चौथा पांचवा गुणस्थान है, याके पहला ही गुणस्थान है।

यहाँ कौऊ कहें कि—असयत दशसयत मय्यगृष्टीके कपायनिकी प्रवृत्ति विशेष है, अर द्रव्यलिङ्गी मुनिके बीरी है, याहीते असयत दशसयत मय्यगृष्टी तौ सोलहवां स्वर्गपर्यत ही जाय अर द्रव्यलिङ्गी उपरिम ग्रंथैयकपर्यत जाय। जाते भार लिङ्गी मुनिते तौ द्रव्यलिङ्गीका हीन कहौ, असयत दशसयत मय्यगृष्टीते याकां हीन कैसे कहिए ?

ताका समाधान—असयत दशसयत मय्यगृष्टीके कपायनिकी प्रवृत्ति तौ है, परन्तु श्रद्धानधिपे किमी ही कपायके करनेका अभिप्राय नाहीं। बहुति द्रव्यलिङ्गीके शुभकपाय करनेका अभिप्राय पाईए है। श्रद्धानधिपे तिनकां भले चाने है। ताते श्रद्धान-अपेक्षा असयत मय्यगृष्टीते भी याके अधिक कपाय है। बहुति द्रव्यलिङ्गीके यागनिकी प्रवृत्ति शुभरूप घनी हो है। अर अघातिकर्मनिधिपे पुण्य पापघका विशेष शुभ अशुभ योगनिके अनुसार है। ताते उपरिम ग्रंथैयकपर्यत पहुँचे है, सा किञ्चु कार्यकारी नाहीं। जाते अघातिया कर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। इनिके उदयते ऊँचे नीचे पद पाए तौ कहा भया। ए तौ वाद्य सयोग-मात्र ससारदशाके स्वांग हैं। आप तौ आत्मा है, ताते आत्मगुणके घातक ए कर्म है तिनका हीनपना कार्यकारी है। सो घातिया कर्मनिका प्रधवाद्य प्रवृत्तिके अनुसार नाहीं। अतरम

पापशक्तिके अनुसारि है । याहीत द्रव्यलिगीत असंयत देश-
 यत सम्यग्दृष्टिके घातिकर्मनिका बध थोरा है द्रव्यलिगीके
 मरघातिकर्मनिका बध बहुत स्थिति अनुमाग लिए होय ।
 असंयत देशमयत सम्यग्दृष्टिके मिध्यात्र अनतानुगधी
 दि कर्मका तौ बध है ही नाहीं । अवशेषनिका बध हो है,
 स्तोत्र स्थिति अनुमाग लिए हो है । बहुरि द्रव्यलिगीके
 दाचित् गुणश्रेणीनिर्जरा न होय सम्यग्दृष्टिके कदाचित् हो
 । दश मकल मयम भए निरतर हो है । याहीत यहु मोक्ष-
 र्गा भया है । तात द्रव्यलिगी मुनि असंयत देशसयत सम्य-
 ष्टांत हीन शास्त्रविषे कथा है । सा समयसार शास्त्रविषे
 लिगी मुनिका हीनपना गाथा वा टाका कलशानिविषे प्रगट
 था है । बहुरि पचास्तिकायकी टीकाविषे जहा केवल यव
 मलबीका कथन किया है, तहा उपहार पचाचार होत भी
 का हीनपना ही प्रकट किया है । बहुरि प्रवचनमारविषे ससार-
 व द्रव्यलिगीको कथा । बहुरि परमात्मप्रकाशादि अन्य शास्त्र-
 विषे भी इस व्याख्यानको स्पष्ट किया है । बहुरि द्रव्यलिगीके
 जप तप शील सयमादि क्रिया पाइए है, तिनको भी अका-
 ष्टी इन शास्त्रनिविषे जहा दिखाये है, मो तहां देखि लेना ।
 प्र प्रन्य बधनेके मयत नाहीं लिखिए है । ऐम केवल व्यव-
 रामामके अवलभी मिध्यादृष्टी तिनका निरूपण किया ।

निरूपण करना, सो व्यवहार है जैसे माटीके घडेको माटीका घडा निरूपण भी निश्चय, अर घृतसयोगका उपचारकरि वाको ही घृतका घडा कहिए, सो व्यवहार । ऐसे ही अन्यत्र जानना । ताते तू किमीको निश्चय माने, किमीको व्यवहार माने, सो भ्रम है । बहुरि तेरे मानने विषे भी निश्चय व्यवहारके परस्पर विरोध आया । जो तू आपकी सिद्ध मान शुद्ध माने है, तो व्रतादिक काहेको करे है । जो व्रतादिकका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है, तो वर्त्तमानविषे शुद्धआत्माका अनुभवन मिथ्या भया । ऐसे दोऊ नयनिके परस्पर विरोध है । ताते दोऊ नयनिके परस्पर विरोध है । ताते दोऊ नयनिका उपादेशपना चने नाही ।

यहा प्रश्न — जो समयसारादिषिषे शुद्ध आत्माका अनुभवको निश्चय कथा है । व्रत तप सपमादिकको व्यवहार कथा है, तैसे ही हम माने है ।

ताका समाधान — शुद्ध आत्माका अनुभव साधा मोक्षमार्ग है । ताते वाको निश्चय कथा । यहा स्वभावते अभिन्न परभावते भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना । ससारीका सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना । बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग है नाही, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारत इनको मोक्षमार्ग कहिए है, ताते इनको व्यवहार कथा । ऐसे भूतार्थ

अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि, इनका निश्चय व्यवहार कहे हैं।
 सो ऐस ही मानना। बहुरि, ए दोऊ ही सांचे मोक्षमार्ग हैं। इन
 दोऊनिका उपादेय मानना, सो तौ मिथ्याबुद्धि ही है। तहाँ
 वह कहे हैं—श्रद्धान तौ निश्चयका राखें है, अर प्रवृत्ति व्यव
 हाररूप राखें हैं, ऐस हम दोऊनिका 'अगीकार' करें हैं। सो भी
 बनें नाही। जातै निश्चयका निश्चयरूप व्यवहारका व्यवहाररूप
 श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकांत
 मिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषे नयका प्रयोजन ही नाही।
 प्रवृत्ति तौ द्रव्यकी परिणति है। तहाँ जिस द्रव्यकी परिणति
 होय ताका तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीका
 अय द्रव्यकी प्ररूपिए, सो व्यवहारनय, ऐस अभिप्राय अनुसार
 प्ररूपणतै तिस प्रवृत्तिविषे दोऊ नय बनें हैं। किछू प्रवृत्ति ही
 तौ नयरूप है नाहीं। तातै या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण
 मानना मिथ्या है। तौ कहा करिए, सो कहिए है—निश्चय-
 नयकरि जो निरूपण क्रिया होय, ताका तौ सत्यार्थ मानि ताका
 श्रद्धान अगीकार करना, अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण क्रिया
 होय, ताका असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोडना। सो ही
 समयमारविषे कथा है—

सर्वत्राध्यवसायमेवमखिल त्याज्य यदुक्तं जिनै—
 स्तमन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्यश्रयस्त्याजित ।

निरूपण करना, सो व्यवहार है जैसे माटीके घड़ेकी माटीका घडा निरूपण सो निश्चय, अर घृतसयोगका उपचारकरि वाकौ ही घृतका घडा कहिए, सो व्यवहार । ऐस ही अन्यत्र जानना । तात तू किसीको निश्चय माने, किसीको व्यवहार माने, सो भ्रम है । बहुरि तेरे मानने विषे भी निश्चय व्यवहारके परस्पर विरोध आया । जो तू आपका सिद्ध मान शुद्ध मान है, तो मत्तादिक काहको करे है । जो मत्तादिकका साधनकरि सिद्ध मया चाहै है, तो वर्तमानविषे शुद्धआत्माका अनुभवन मिथ्या मया । ऐस दोऊ नयनिके परस्पर विरोध है । ताते दोऊ नयनिके परस्पर विरोध है । ताते दोऊ नयनिका उपादेयपना नै नाही ।

यहां प्रश्न—जो समयसारादिविषे शुद्ध आत्माका अनुभवको निश्चय कया है । अत तप सयमादिकको व्यवहार कया है, तैसे ही हम माने हैं ।

ताका समाधान—शुद्ध आत्माका अनुभव मांचा मोक्षमार्ग है । ताते वाकौ निश्चय कया । यहाँ स्वभावाते अभिन्न परभावाते भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना । ससारीको सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना । बहुरि वृत्त तप आदि मोक्षमार्ग है नाहीं, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारते इनको मोक्षमार्ग कहिए है, ताते इनको व्यवहार कया । ऐस भूतार्थ

अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि, इनको निश्चय व्यवहार कहे हैं।
 सो ऐसे ही मानना। बहुरि, ए, दोऊ ही सांचे मोक्षमार्ग हैं। इन
 दोऊनिको उपादेय मानना, सो तौ मिथ्याबुद्धि ही है। तहाँ
 वह कहे हैं—श्रद्धान तौ निश्चयका राखे हैं, अर प्रवृत्ति व्यव-
 हाररूप राखे हैं, ऐसे हम दोऊनिको अगीकार करे हैं। सो भी
 बने नाही। जाते निश्चयका निश्चयरूप व्यवहारका व्यवहाररूप
 श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकांत
 मिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषे नयका प्रयोजन ही नाही।
 प्रवृत्ति तौ द्रव्यकी परिणति है। तहा जिस द्रव्यकी परिणति
 होय ताको तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीको
 अन्य द्रव्यकी प्ररूपिए, सो व्यवहारनय, ऐसे अभिप्राय अनुसार
 प्ररूपणते तिस प्रवृत्तिविषे दोऊ नय बने हैं। किछु प्रवृत्ति ही
 तौ नयरूप है नाहीं। ताते या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण
 मानना मिथ्या है। तौ उहा करिए, सो कहिए हैं—निश्चय
 नयकरि जो निरूपण किया होय, ताको तौ सत्यार्थ मानि ताका
 श्रद्धान अगीकार करना, अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण किया
 होय, ताका असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोडना। सो ही
 समयसारविषे कथा है—

सर्वत्राध्यवसायमेवमखिल त्याज्य यदुन्त जिने—

रतमन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्यश्रयस्त्याजित ।

सम्यङ्निश्चयमेकमेव परम निष्कम्प्यमाकम्प्य किं
शुद्धज्ञानधने महिम्नि न निजेषध्नन्ति सन्तो धृतिम् ।

समस्यार कलशा निर्जरा •—

याका अर्थ—जात सर्व ही हिंसादि वा अहिंसादिविषे अक
वमाय हैं सो समस्त ही छोड़ना, ऐसा जिनदेवनिकरि कहा
ताते मैं ऐसैं मानों हौं, जो पराश्रित व्यवहार है, सो सर्व
छुड़ाया है । सन्त पुरुष एक निश्चयहीकों मर्ल प्रकार निश्चय
अंगीकारकरि शुद्ध ज्ञानधनरूप निजमहिमाविषे स्थिति क
न करै हैं ।

यहां व्यवहारका तो त्याग कराया, ताते निश्चयको अंग
कारकरि निजमहिमारूप प्रवर्चना युक्त है । बहुरि पट्पाहुडि
कथा है—

जो सुत्तो व्यवहारे सो जोई जागदे सकज्जन्मि
जो जागदि व्यवहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे ॥ १

याका अर्थ—जो व्यवहारविषे सत्ता है, सो जोगी अप
कार्यविषे जागै है । बहुरि जो व्यवहारविषे जागै है, सो अप
कार्यविषे सत्ता है । ताते व्यवहारनयका अज्ञान छोड़ि निश्चय
नयका अज्ञान करना योग्य है । व्यवहारनय परद्रव्य परद्रव्य

१ या निशा सबभूतानां तस्यो जागति समयमा ।

यस्यां जागति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने ॥ गीता ७-५

वा तिनके भावनिर्णय वा कारण कार्यादिकों काहूँ काहूँ विप्रे
मिलाय निरूपण करे है। सो ऐसे ही भ्रष्टान्तें मिथ्यात्व है।
तातें याका त्याग करना। बहुरि निश्चयनय तिनहीकों यथा-
वत् निरूपे है, काहूँ काहूँ विप्रे न मिलावे है। ऐसे ही भ्रष्टान्तें
सम्पत्त हो है। तातें याका भ्रष्टान्त करना। यहाँ प्रश्न—जो
ऐमें है तौ जिनमार्गविप्रे दोऊ नयनिका ग्रहण करना कथा
है, सो कैसे ?

ताका समाधान—जिनमार्गविप्रे कहीं तौ निश्चयनयकी
मुख्यता लिए व्याख्यान है ताको तौ 'सत्यार्थ ऐसैं ही है' ऐसा
जानना। बहुरि कहीं व्यवहारनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान
है, ताको 'ऐसैं है नाहीं निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है'
ऐसा जानना। इस प्रकार जाननेका नाम ही दोऊ नयनिका
ग्रहण है। बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानकों समान सत्यार्थ
जानि ऐमें भी है, ऐमा भ्रमरूप प्रवर्तनेकरि तौ दोऊ नयनिका
ग्रहण करना कथा है नाहीं।

बहुरि प्रश्न—जो व्यवहारनय असत्यार्थ है, तौ ताका उप-
देश जिनमार्गविप्रे काहूँ दिया—एक निश्चयनयहीका निरू-
पण करना था ?

ताका समाधान—ऐसा ही तर्क समयसारविप्रे किया है।
तहाँ यह उत्तर दिया है—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभास विणा उ गाहेउ ।
तह व्यवहारेण विणा परमत्थुवणसणमसके ॥१,८॥

याका अर्थ—जैम अनार्य जो म्लेछ सो साहि म्लेछमाया विना अर्ध ग्रहण करावनेको समर्थ न हूजे । तैसे व्यवहार विना परमार्थका उपदेश अशक्य है । तांत व्यवहारका उपदेश है । बहुरि इसही सूत्रकी व्याख्याविषे ऐसा रूढा है—‘व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्य’ । याका अर्थ—यह निश्चयके अगीकार करावनेको व्यवहारकरि उपदेश दीजिए है । बहुरि व्यवहारनय है, सो अगीकार करने योग्य नाहीं ।

यहां प्रश्न—व्यवहार विना निश्चयका उपदेश कैसे न होय । बहुरि व्यवहारनय कैसे अगीकार करना, सो कहो ?

ताका समाधान—निश्चयनयकरि तो आत्मा परद्रव्यनिर्त मित्त स्वभावनिर्त अभिन्न, स्वयसिद्ध वस्तु है ताको जे न पहिचानै, तिनको ऐसे ही कदा करिए तो वह समझै नाहीं । तब उनको व्यवहारनयकरि शरीरादिक परद्रव्यनिकी सापेक्षकरि नर नारक पृथ्वीकायादिरूप जीवके विशेष किए । तब मनुष्य जीव है, नारकी जीव हैं, इत्यादि प्रकार लिए बाकै जीवकी पहिचानि भई । अथवा अमेदवस्तुविषे भेद उपजाय ज्ञान दर्शनादि गुणपर्यायरूप जीवके विशेष किए, तब जाननेवाला जीव है, देखनेवाला जीव है, इत्यादि प्रकार लिए बाकै जीवकी पहिचानि

भई । बहुरि निश्चयकरि वीतरागभाव मोक्षमार्ग है । ताको जे न पहिचानै तिनको ऐस ही कहा करिए, तौ वै समझै नाही । तब उनको व्यवहारनयकरि तत्त्वश्रद्धानज्ञानपूर्वक परद्रव्यका निमित्त भेटनेकी सापेक्षकरि व्रत शील मयामादिकरूप वीतराग भावके विशेष दियाए, तब बाक वीतरागभावकी पहिचानि भई । याही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहारविना निश्चयका उपदेशका न होना जानना । बहुरि यहा व्यवहारकरि नर नारकादि पयायही-को जीव कहा, सो पर्यायहीको जीव न मानि लैना । पयाय तौ जीव पुद्गलका मयोगरूप है । तदा निश्चयकरि जीवद्रव्य जुदा है, ताहीको जीव मानना । जीवका मयोगत शरीरादिकको भी उपचारकरि जीव कहा, सो कहने मात्र ही है । परमार्थत शरीरादिक जीव होते नाही । ऐसा ही श्रद्धान करना । बहुरि अमेदआत्माविषे ज्ञानदर्शनादि भेद किए, सो तिनको भेदरूप ही न मानि लैने । भेद तौ समझावनेके अर्थ हैं । निश्चयकरि आत्मा अमेद ही है । तिसहीको जीववस्तु मानना । सशा सख्या-दिकरि भेद कहे, सो कहने मात्र ही है । परमार्थत जुदे जुदे हैं नाहीं । ऐसा ही श्रद्धान करना । बहुरि परद्रव्यका निमित्त भेटनेकी अपेक्षा व्रत शील मयामादिकको मोक्षमार्ग कहा । सो इनहीको मोक्षमार्ग न मानि लैना । जात परद्रव्यका ग्रहण त्याग आत्मके होय, तौ आत्मा परद्रव्यके कर्ता इत्ता होय । सो कोई द्रव्य कोई द्रव्यके आधीन है नाहीं । तात आत्मा अपने

याव रागादिक है, तिनको छोड़ि धीतरागी हो । सो निश्चयकरि धीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है । धीतराग भावनिके अरु ब्रतादिकनिर्क कदाचित् कार्यकारणनो है । ताँ ब्रतादिकको मोक्षमार्ग कहे; सो कहने मात्र ही हैं । परमार्थत बाज क्रिया मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना । ऐसै ही अथ भी व्यवहारनयका अगीकार करना जानि लेना ।

यहा प्रश्न—जो व्यवहारनय परको उपदेशविषय ही कार्यकारी है कि अपना भी प्रयोजन साथै है ?

ताका समाधान—आप भी यावत् निश्चयनयकरि प्ररूपित वस्तुको न पहिचानै, तावत् व्यवहार मागकरि वस्तुका निश्चय करै । ताँ नीचली दृष्टाविषे आपको भी व्यवहारनय कार्यकारी है । परन्तु व्यवहारको उपचार मात्र मानि वासै डारि वस्तुका श्रद्धान ठोक करै, तो कार्यकारी होय । बहुति जो निश्चयवत् व्यवहार भी सत्यभूत मानि वस्तु ऐसै ही हैं, ऐसा श्रद्धान करै, तो उलटा अकार्यकारी होय जाय । सो ही पुरुषार्थसिद्धय पायविषे कथा है—

अवुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वर देशयन्त्यभूतार्थम् ।
 व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ।६।
 माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य ।
 व्यवहारप्वहितथा निश्चयता यात्यनिश्चयज्ञस्य ।७।

इनका अर्थ—गुनिराज अग्रानीके समझावनेकों असत्यार्थ व्यवहारनय ताकों उपदेश है। जो केवल व्यवहारहीकों जानै है, ताकों उपदेश ही देना योग्य नाहो है। बहुरि जैसे जो साँचा सिंहाकों न जानै, ताकँविलाव ही सिंह है, तैसे जो निश्चयकों न जानै, ताकँ व्यवहार ही निश्चयपणाकों प्राप्त हो है।

तहाँ कोई निर्विचार पुरुष ऐसँ कहै—तुम व्यवहारको असत्यार्थ हेय कहो हौ, तौ हम व्रत शील सयमादिका व्यवहार कार्य काहेकों करै-सर्व छोडि देंगे। ताकों कहिए है—किछु व्रत शील सयमादिकका नाम व्यवहार नाही है। इनकों मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, सो छोडि दे। बहुरि ऐसा श्रद्धानकरि जो इनकों तौ पाक्ष सहकारी जानि उपचारितँ मोक्षमार्ग कहा है। ए तौ परद्रव्याश्रित हैं। बहुरि साँचा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है, सो स्वद्रव्याश्रित है। ऐसँ व्यवहारकों असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिककों छोडनेतँ तौ व्यवहारका हेयपना होता है नाहीं। बहुरि हम पूछँ हैं—व्रतादिककों छोडि कदा करंगा। जो हिंसादिरूप प्रवर्त्तंगा, तौ तहाँ तौ मोक्षमार्गका उपचार भी समर्व नाही। तहाँ प्रवर्त्तितँ कहा मला होयगा, नरकादिक पावँगा। तातँ ऐसँ करना, तौ निर्विचारपना है। बहुरि व्रतादिकरूप परिणति भेटि केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बनेँ, तौ मलँ ही है। सो नीचली दशाविषँ होय मकँ नाहीं। तातँ व्रतादिसाधन छोडि स्वच्छद होना योग्य नाहीं। या

प्रकार श्रद्धानविषे निश्चयकों, प्रवृत्तिविषे व्यवहारकों, उपादेय मानना, सो भी मिथ्यामान ही है।

बहुरि यहू जीव दोऊ नयनिका अगीकार करनेके अर्थि कदाचित् आपको शुद्ध सिद्धसमान रागादिरहित केवलज्ञानादिसहित आत्मा अनुभवै है, ध्यानमुद्रा धारि ऐसे विचारविषे लागै है। सो ऐमा आप नाहीं, परन्तु अमकरि में ऐमा ही हौं, ऐमा मानि सतुष्ट हो है। कदाचित् वचनद्वारि निरूपण ऐमा ही करै है। सो निश्चय तो यथावत् वस्तुकों प्ररूपे, प्रत्यक्ष जैसा आप नाहीं तैसा आपको मानना, सो निश्चय नाम कैसे पावै। जैसा केवल निश्चयमासवाला जीवके पूरे अयथार्थपना करा था, तैसे ही आपके जानना। अथवा यह ऐसे मानै है, जो इस नयकरि आत्मा ऐसा है, इस नयकरि ऐसा है, सो आत्मा तो जैसा है तैसा है ही, तिसविषे नयकरि निरूपण करनेका जो अभिप्राय है, ताको न पहिचानै है। जैसे आत्मा निश्चय करि तो सिद्धसमान केवलज्ञानादिसहित द्रव्यक्रम—नोकर्म-भावकर्मरहित है, व्यवहारनयकरि ससारी मतिज्ञानादिसहित वा द्रव्यक्रम नोकर्म भावकर्मसहित है, ऐसा मानै-है। सो एक आत्माके ऐसे दोय स्वरूप तो होंय नाहीं। जिस भावहीका सहोत्पना तिस भावहीका रहितपना एरु वस्तुविषे कैमसपर ? ताते ऐसा मानना भ्रम है। तो कैसे है जैसे राजा रक्षा मनुष्य पनेकी अपेक्षा समान है, तैसे सिद्ध ममारी जीवत्पनेकी अपेक्षा

समान कहे हैं। ऊबलज्ञानादि अपेक्षा समानता मानिए, सो ही नहीं। ससारीक निश्चयकरि मतिज्ञानादिक हो हैं। सिद्धक केवलज्ञान है। इतना विशेष है—ससारीक मतिज्ञानादिक कर्म का निमित्त है, तातै स्वभाव अपेक्षा ससारीक केवलज्ञानकी शक्ति कहिए तो दोष नहीं। जैसे एक मनुष्यके राजा होनेकी शक्ति पाईए, तैसे यहु शक्ति जाननीं। बहुरि द्रव्यकर्म नोकर्म पुद्गलकरि निपजे हैं, तातै निश्चयकरि ससारीक भी इनका भिनपना है। परन्तु सिद्धवत् इनका कारण—कार्यसमर्थ भी न मानै, तौ भ्रम ही है। बहुरि भावकर्म आत्माका भाव है, सो निश्चयकरि आत्माहीका है। कर्मके निमित्ततै हो हैं, तातै व्यवहारकरि कर्मका कहिए है। बहुरि सिद्धवत् ससारीक भी रागादिके न मानना, कर्महीरा मानना यहु भी भ्रम ही है। याहि प्रकारकरि नयकरि एक ही वस्तुको एक भाव अपेक्षा वैसे भी मानना, वैसे भी मानना, सो ती मिथ्याबुद्धि है। बहुरि जुदे भावनिकी अपेक्षा नयनिकी प्ररूपणा है, ऐसे मानि यथासमव वस्तुको मानना सो सांचा श्रद्धान है। तातै मिथ्यादृष्टी अने-कातरूप वस्तुको मानै, परन्तु यथार्थ भावको पहिचानि मानि सकै नहीं, ऐसा जानना।

बहुरि इम जीवके व्रत शील सपमादिकका अगीकार पाईए है, सो व्यवहारकरि 'ए भी मोक्षके कारण हैं, ऐसा मानि तिनको उपादेय मानै हैं। सो जैसेकेवल व्यवहारावलम्बी जीवके

स्त्वोक रोग तौ निरोग होनका कारण है नाहीं । इतना है स्त्वोक रोग रहै निरोग होनेका उपाय करै, तौ होइ जाय । चदुरि जो स्त्वोक रोगहीकों मला जानि ताका राखनेका यत्न करै, तौ निरोग कैसै होय । तैसै कपायीक तीव्रकपायरूप अशुभोपयोग था, पीछे मदकपायरूप शुभोपयोग भया, तौ वह शुभोपयोग तौ नि कपाय शुद्धोपयोग होनेकों कारण है नाहीं । इतना है— शुभोपयोग भए शुद्धोपयोगका यत्न करै, तौ हाय जाय । चदुरि जो शुभोपयोगहीकों मला जानि ताका साधन किया करै, तौ शुद्धोपयोग कैसै होय । तातै मिथ्यादृष्टोका शुभोपयोग तौ शुद्धोपयोगकों कारण है नाहीं । सम्यग्दृष्टाके शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्ति होय, एसा मुख्यपनाकरि कहीं शुभोपयोगकों शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है ऐसा जानना । चदुरि यह जीव आपकों निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानै है । तहां पूर्वोक्त प्रकार आत्माकों शुद्ध मान्या, सो तौ सम्यग्दर्शन भया । तैसै ही जा-या सो सम्यग्ज्ञान भया । तैसै हो विचारविषै प्रवत्या सो सम्यक्चारित्र्य भया । ऐसै तौ आपके निश्चय रत्नत्रय भया मानै । सो में प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसै मानौ, जानौ, विचारौ'हों, इत्यादि विवेकरहित भ्रमतै सतुष्ट हो है । चदुरि अरहतादि विना अन्य देवादिककों न मानै है, चा जैनशास्त्र अनुमार जीवादिके भेद सीख लिए हैं तिनहीकों

मान है औरकों न माने, सो तौ मध्यदर्शन भया । बहुरि जैन-
शास्त्रनिका यस्यासविषै बहुत प्रवर्त्त है, सो सम्यग्ज्ञान भया ।
बहुरि ब्रतादिरूप क्रियानिविषै प्रवर्त्त है, सो सम्पकचारित्र भया ।
ऐम आपके व्यवहार रत्नत्रय भया माने । सो व्यवहार तौ उप-
चारका नाम है । सो उपचार भी तौ तब धरे, जब सत्यभूत
निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय । जैसे निश्चय रत्नत्रय
सधे, तैसे इनको साधे, तौ व्यवहारपनो भी सम्ये । सो याके तौ
सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहचानि ही भई नाहीं । यहु ऐसे
बैसे साधि सकै । आज्ञाअनुमारी हुवा देरयादेरयी साधन करे
है । ताते याके निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया । आगे
निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गका निरूपण करेगे, ताका साधन भए
ही मोक्षमार्ग होगा । ऐम यहु जीव निश्चयामासको माने जाने
है । परन्तु व्यवहार साधनको भी भला जाने है, ताते स्वच्छन्द
होय अशुभरूप न प्रवर्त्त है । ब्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्त है,
ताते अतिम ग्रैदेयक पर्ये त पदको पाये है । बहुरि जो निश्चया-
मासकी प्रबलताते अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय, तौ कुमतिविषै
भी गमन होय, परिणामनिर्क अनुमारी फल पावे है । परन्तु
ससारका ही भोक्ता रहै है । सांचा मोक्षमार्ग पाए बिना सिद्ध-
पदको न पाये है । ऐम निश्चयामास व्यवहारामास दोऊनिके
अवलम्बी मिध्यादृष्टी तिनिका निरूपण किया ।

स्वोक रोग तौ निरोग होनका कारण है नाहीं । इतना है स्वोक रोग रहै निरोग होनेका उपाय करै, तौ होइ जाय । बहुति जो स्वोक रोगहीको मला जानि साक्षात् साधनेका यत्न करै, तौ निरोग कैसे होय । तैसें कषायीके तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग या, पीछे मृदकषायरूप शुभोपयोग भया, तौ यह शुभोपयोग तौ नि कषाय शुद्धोपयोग होनेको कारण है नाहीं । इतना है— शुभोपयोग भए शुद्धोपयोगका यत्न करै, तौ होय जाय । बहुति जो शुभोपयोगहीको मला जानि ताका साधन किया करै, तौ शुद्धोपयोग कैसे होय । ताने मिथ्यादृष्टीका शुभोपयोग तौ शुद्धोपयोगको कारण है नाहीं । सम्यग्दृष्टीके शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्ति होय, एसा मुरूपनाकरि कहीं शुभोपयोगको शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है एसा जानना । बहुति यह जोव आपको निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानै है । तहां प्रोक्त प्रकार आत्माको शुद्ध मान्या, सो तौ सम्यग्दर्शन भया । तैसें ही जान्या सो सम्यग्ज्ञान भया । तैसें हो विचारविषे प्रवृत्त्या सो सम्यक्चारित्र्य भया । एसें तौ आपके निश्चय रत्नत्रय भया मानै । सो मै प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसे मानौ, जानौ, विचारौ'हौं, इत्यादि विवेकरहित भ्रमते मत्तुष्ट हो है । बहुति अरहतादि विना अन्य देवादिकको न मानै है, वा जैनशास्त्र अनुसार जीवादिके भेद सीख लिए हैं तिनहीको

न है औरकों न मानें, सो तौ सम्यग्दर्शन भया । बहुरि जन-
 स्त्रनिका अभ्यासविषे बहुत प्रवर्त्तै है, सो सम्यग्ज्ञान भया ।
 रि व्रतादिरूप क्रियानिषे प्रवर्त्तै है, सो सम्यक्चारित्र्यभया ।
 आपकै व्यवहार रत्नत्रय भया मानें । सो व्यवहार तौ उप-
 रका नाम है । सो उपचार भी तौ तय बनें, जब सत्यभूत
 रत्नत्रयका कारणादिक होय । जैसे निश्चय रत्नत्रय
 में, तैसे इनको साथ, तौ व्यवहारपनो भी समर । सो याकै तौ
 यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहचानि ही मई नाहीं । यहू ऐसैं
 साधि सकै । आज्ञाअनुसारी हुवा देख्यादेखी साधन करै
 । तातैं याकै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया । आगे
 निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गका निरूपण करैगे, ताका साधन भए
 मोक्षमार्ग होगा । ऐसैं यहू जीव निश्चयामात्रको मानें जानें
 । परंतु व्यवहार साधनको भी भला जानें है, तातैं स्वच्छन्द
 य अशुभरूप न प्रवर्त्तै है । व्रतादिक शुभापारूप प्रवर्त्तै है,
 तातैं अतिम प्रवेयक पर्यंत पदको पावै है । धुर जो निश्चय
 मकी प्रवृत्तातैं अशुभरूप प्रवृत्ति होय जातै, तौ दुर्गति
 गमन होय, परिणामनिष्ठ अनुमति छुटवै है ।
 सारका ही भोक्ता रहै है । सांचा साधन पाए बिना
 पदको न पावै है । ऐसैं निश्चयामात्र द्वारा भास
 अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनिका ब्रिंशति ।

[सम्पत्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टि]

अब सम्पत्त्वकी सन्मुख जे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है—

कोई मदकषायादिकका कारण पाय ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम भया, तातैं तत्त्वविचार करनेकी शक्ति मई । अर मोह मद भया, तातैं तत्त्वादिविचारविषैं उधम भया । बहुरि बाह्य निमित्त देव, गुरु, शास्त्रादिकका भया, तिनकरि सांचा उपदेशका लाभ भया । तहां अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्गका, वा देवगुरुधर्मादिकका वा जीवादि तत्त्वनिका, वा आपा परका, वा आपकी अहितकारी हितकारी भावनिका, इत्यादिकका उपदेशतैं सावधान होय, ऐमा विचार किया—अहो मुझको तौ इनि घातनिकी खबरि नाही, मैं भ्रमतैं भूलि पर्याय हीविषैं तन्मय भया । सो इस पर्यायकी तौ थोरे ही कालकी स्थिति है । बहुरि यहाँ मोकों सर्व निमित्त मिले हैं । ताते मोकों इन बातनिका ठीक करना । जातैं इनविषैं तौ मेरा ही प्रयोजन भामै है । ऐमें विचारि जो उपदेश सुन्या ताका निद्धार करनेका ऊधम किया । तहां उद्देश, लक्षणनिर्देश, परीक्षाद्वारकरि तिनका निद्धार होय । तातैं पहलैं तौ तिनके नाम सीखै, सो उद्देश भया । बहुरि तिनके लक्षण जानैं । बहुरि ऐसैं समवै है कि नाही, ऐमा विचारलिऐ परीक्षा करने लगै । तहां नाम सीख लेना अर लक्षण जानि लेना ये दोऊ तौ उपदेशक अनुसार हो है । जैम उपदेश दिया

तैसँ पाद करि लेंना बहुरि पराधा कर्नो ~~करे~~ ~~करे~~
 चाहिए है । सो विवेककरि एकात ~~असँ~~ ~~असँ~~ ~~असँ~~
 बैसँ उपदेश दिया तसँ ही है कि ~~अन्यथा~~ ~~है~~ ~~है~~
 प्रमाणकरि ठीक करै, वा उपदेश तो ~~हो~~ ~~हो~~ ~~हो~~
 तो ऐसँ होय । सो इनविषै प्रबल युक्ति ~~के~~ ~~के~~ ~~के~~
 कौन है जो प्रबल भासै, ताकी ~~सांच~~ ~~सांच~~ ~~सांच~~
 अन्यथा सांच भासै, वा सदेह ~~है~~ ~~है~~ ~~है~~
 विशेष घानी होय तिनको ~~पूछै~~ ~~पूछै~~ ~~पूछै~~
 विचारै ऐसँ ही यावन् निहार न होय ~~है~~ ~~है~~ ~~है~~
 अथवा समान बुद्धिके घातक हाय, ~~निर्णय~~ ~~निर्णय~~ ~~निर्णय~~
 मया होय तैसा कहै । प्रश्न उत्तरके ~~पद~~ ~~पद~~ ~~पद~~
 सो प्रश्नोत्तरविषै निरूपण मया ~~हाय~~ ~~हाय~~ ~~हाय~~
 याही प्रकार अपने अंतराविषै ~~है~~ ~~है~~ ~~है~~
 निर्णय होय भाव न भासै, तावन् ~~है~~ ~~है~~ ~~है~~
 बहुरि अन्यमतीनिकरि कल्पित ~~है~~ ~~है~~ ~~है~~
 ताकरि जैन उपदेश अथवा भासै, ~~है~~ ~~है~~ ~~है~~
 प्रकारकरि उद्यम किए तैसँ निरुद्ध ~~है~~ ~~है~~ ~~है~~
 है मुझको भी ऐसँ हा भासै है, ~~है~~ ~~है~~ ~~है~~
 देव अन्यथावादी है नाहीं ।

यहाँ फाँट कहै—निन्दक अन्यथावादी नाहीं है ।

उनका उपदेश है, तैसँ श्रद्धानकरि लीजिए, परीक्षा काहेकौं कीजिए ?

ताका समाधान—परीक्षा किण बिना यहू तौ मानना होय, जो जिनदेव ऐंम ब्रह्मा है, सो सत्य है। परन्तु उनका भाव आपकौं भासै नाहीं। बहुरि भाव मासँ पिना निर्मल श्रद्धान न होय। लाकी काहूका वचनहीकरि प्रतीति करिए, ताकी अन्यका वचनकरि अन्यथा भी प्रतीति होय जाय, तौ शक्तिअपेया वचनकरि कीन्हीं प्रतीति अप्रतीतिवत् है। बहुरि जाका भाव मास्या होय, ताका अनेक प्रकारकरि भी अन्यथा न मानै। तातँ भाव भासँ प्रतीति होय सोई सांची प्रतीति है। बहुरि जो कहौगे, पुस्त्यप्रमाणतँ वचनप्रमाण कीजिए है, तौ पुरुषकी भी प्रमाणता स्वयमेव न होय। चाके केई वचननिकी परीक्षा पहलँ करि लीजिये, तब पुस्त्यकी प्रमाणता होय।

यहां प्रश्न—उपदेश तौ अनेक प्रकार, किम किसकी परीक्षा करिये ?

ताका समाधान—उपदेशविषै केई उपादेय केई हेय केई श्रेय तत्व निरूपिये है। तहां उपादेय हेय तत्त्वनिकी तौ परीक्षा करि लैना। जातँ इन विषै अन्यथापनों भये अपना घुरा हो है। उपादेयकौं हय मानि लै, तौ घुरा होय, हेयकौं उपादेय मानि लै तौ घुरा होय।

बहुरि जो कहौगा, आप परीक्षा न करी, अरु बिनवचन

इतें उपादेयकौ उपादेय जानै, हेयकौ हेय जानै, तो कैसै
ज्ञा होय ?

ताका समाधान—अर्थका भाव भासै विना वचनका
अभिप्राय न पहिचानै । यहु तौ मानि ले, जो मै जिन वचन
अनुमारि मानौ हौ । परन्तु भाव भासे विना अन्यथापनो
होय जाय । लोकरुषिपै भी किंकरकौ किमी कार्यकौ भेजिये
सो वह उस कार्यका भाव जानै, तौ कार्यकौ सुधारै, जो भाव
न मासै, तो कही चकि ही जाय । तार्त भाव मापनेके अर्थ
हय उपादेय तत्त्वनिकी परीक्षा अत्रय करनी ।

बहुरि वह कहै, है—जो परीक्षा अन्यथा होय जाय, तौ
कहा करिये ?

ताका समाधान—जिनवचन अर अपनी परीक्षा इनकी
समानता होय, तब तौ जानिये सत्य परीक्षा भई । यावत् ऐसै
न होय तावत् जैस कोई लेखा करै है, ताकी विधि न मिलै
तावत् अपनी चूरुकाँ टूटै । तैसै यह अपनी परीक्षाविषै
विचार किया करै । बहुरि जो ज्ञेयतत्व है, तिनकी परीक्षा
होय सकै, तो परीक्षा करै । नाही, यह अनुमान करै, जो
हेय उपादेय तत्र ही अन्यथा न कहै, तौ ज्ञेयतत्व अन्यथा
किमै अर्थ कहै । जैस कौऊ प्रयोजनरूप कार्यानिधिपै झूठ न
बोलै, सो अप्रयोजन विषै झूठ काहेकाँ बोलै । तातें ज्ञेयतत्व-
निका परीक्षाकरि भी वा आज्ञाकरि स्वरूप जानिये । तिनका

यथार्थ स्वरूप न भामै, तो भी दोष नाही । याहीतें जैन शास्त्रीविषे तत्वनिदिकका निरूपण किया, तहां तो हतु युक्ति आदिकरि जैसें याकै अनुमानादिकरि प्रतीति आरै, तैसें कथन किया । बहुरि त्रिलोक, गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिकका कथन आज्ञा अनुसारि किया । तातें हेयोपादेय तत्त्वनिकी परीक्षा करनी योग्य है । तहां जीवादिक द्रव्य वा तत्व तिनको पहिचानना । बहुरि त्यागनें योग्य मिथ्यात्न रागादिक, अतः ग्रहणें योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना । बहुरि निमित्त नैमित्तादिक जैसें हैं, तैसें पहिचानना । इत्यादि मोक्षमार्ग विषे जिनके जानें प्रवृत्ति होय, तिनको अत्रय जाननें । सो इनकी तो परीक्षा करनी । सामान्यपनै हेतु युक्ति करि इनको जाननें, वा प्रमाण नयनिकरि जाननें वा निर्देश स्वाम्यत्वादिकरि, वा सत् सग्न्यादि करि इनका विशेष जानना । जैसी बुद्धि होय जैसा निमित्त बर्न, तैसें इनको सामान्य विशपरूप पहिचाननें । बहुरि इस जाननेंका उपकारी गुणस्थान मार्गणादिक वा पुराणादिक, वा व्रतादिक क्रियादिकका भी जानना योग्य है । यहां परीक्षा होय मकै, तिनकी परीक्षा करनी, न होय सकै ताका आज्ञा अनुसारि जानपना करना । ऐमें इस जाननेंके अर्थ कबहूँ आपही विचार करै है, कबहूँ शास्त्र बांचै है, कबहूँ सुनें है, कबहूँ अभ्यास करै है, कबहूँ प्रश्नोत्तर करै है । इत्यादि रूप प्रवर्तै है । अपना कार्य करने

का कार्य हर्ष बहुत है, तब अतरंग प्रीतिसे ताका साधन करै ।
 वा प्रकार साधन करत यावत् सांचा तत्वश्रद्धान न होय, 'यहु
 ऐं ही है' ऐसी प्रतीति लिये जीवादि तत्त्वनिष्ठा स्वरूप आपकों
 न मानै, जैसे पर्यायविषै अहबुद्धि हैं, तैसे केवल आत्मविषै अह-
 बुद्धि न आवै, हित अहितरूप अपने भाव न पहिचानै, तावत्
 सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टी है । यह जीव थोरे ही काल में
 सम्यक्तको प्राप्त होगा । इस ही भवमें वा अन्य पर्यायविषै
 सम्यक्तको पावैगा । इस भवमें अभ्यासकरि परलोकविषै तिर्य-
 चादिगतिविषै भी जाय—तौ तहां तस्कारके बलसे देव गुरु
 शास्त्रका निमित्तविना भी सम्यक्त होय जाय । जातै ऐसे
 अभ्यासके बलसे मिथ्यात्वकर्मका अनुभाग हीन हो है । जहां
 चाका उदय न होय, तहां ही सम्यक्त होय जाय । मूलकारण
 यह ही है । देवादिकका तौ बाह्य निमित्त हैं, सो मुख्यताकरि
 तौ इनके निमित्तहीत सम्यक्त हो है । तारतम्यसे पूर्व अभ्यास
 तस्कारतौ वर्तमान इनका निमित्त न होय, तौ भी सम्यक्त
 होय सकै है । सिद्धांतविषै ऐसा सूत्र कथा है—

“तन्निर्गर्गादिधिगमाद्वा” [तत्त्वा० सू० १,३]

याका अर्थ यह—मो सम्यग्दर्शन निर्गर्ग वा अधिगमसे
 हो है । तहां देवादिक बाह्य निमित्त विना होय, सो निर्गर्गसे
 भया कहिए । देवादिकका निमित्तसे होय, मो अधिगमसे भया
 कहिए । देखो तत्त्वविचारकी महिमा, तत्त्वविचाररहित देवादिक-

की प्रतीति करें, बहुत शस्त्र अभ्यास, व्रतादिक पात
णादि करें, ताकें तौ सम्यक्त होनेका अधिकार
तत्त्वविचारवाला इन बिना भी सम्यक्तका अधिकार
बहुत कोई जीवकें तत्त्वविचारिकें होनें पहलें किसी
देवादिककी प्रतीति होय, वा वृत्त तपका अर्णोकार
तत्त्वविचार करै। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्त्वा
ही हा है। बहुत काहूकें तत्त्वविचार भए पीछे तत्त्व
होनेतें सम्यक्त तौ न भया, अर व्यवहार धर्मकी प्रत
होय गई, तातें देवादिककी प्रतीति करै है, वा वृत्त तप
कार करै है, काहूकें देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त
होय, अर वृत्त तप सम्यक्तकी साथि भी होय, अर प
भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तौ नियम है। इ
सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाहीं। वने
पहलें सम्यक्त होय पीछे ही व्रतादिकको धारै है। काहू
पत् भी होय जाय है। ऐसैं यहू तत्त्वविचारवाला जीव मा
अधिकारी है। परन्तु चाकें सम्यक्त होय ही होय, ऐसा
नाहीं। जातें शास्त्रविषे सम्यक्त होनेतें पहलें पच ल
होना कथा है—

[पच लब्धियोंका स्वरूप]

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण । तहां
होते सतें तत्त्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि का

क्षयोपशम होय । उदयकालको प्राप्त सर्वधाती स्पृहकनिके
 निपेकनिका उदयका अभाव सो क्षय, अर अनागतकालविषे उदय
 आवने योग्य तिनहीका सत्चारूप रहना सो उपशम, ऐसी देश-
 धाती स्पृहकनिका उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम
 क्षयोपशम है । ताकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि है । बहुरि मोहका
 मद उदय आनेतें मदरूपाय रूप भाव होय, तदा तत्त्वविचार
 होय सकै, सो विशुद्धलब्धि है । बहुरि जिनदेवका उपदेश्या
 तत्वका धारण होय, विचार होय सो देशनालब्धि है । जहा
 नरकादिविषे उपदेशना निमित्त न होय, तदा पूर्वसस्कारतें होय ।
 बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता घटकरि अत कोटाकोटी मागरप्रमाण
 रहि जाय, अर नवीन बध अत कोटाकोटी प्रमाण तारु सग्या
 तें भागमात्र होय, सो भी तिम लब्धिकालतें लगाय क्रमतें
 घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बध क्रमतें मिटता जाय,
 इत्यादि योग्य अवस्थाका होना, सो प्रायोग्यलब्धि है । सो ए
 च्यारौ लब्धि मन्य वा अमन्यरै होय है इन च्यार लब्धि मये
 पीछे सम्यक्त होय तौ होय न होय तौ नाहीं भी होय । ऐस
 लब्धिसारविषे कथा है । * तातें तिस तत्वविचारवालाकें सम्य
 कत्व होनेका नियम नाहीं । जैसे काहूको हितकी शिक्षा दई,
 ताको बह जानि विचार करै, यह सीख दई सो कर्म है । पीछे
 विचारतां वाकें ऐस ही है, ऐसी प्रतीति होय जाय । अथवा

की प्रतीति करे, बहुत शास्त्र अभ्यास, व्रतादिक पाले तपस्वर
णादि करे, तारै तौ सम्यक्त दानेका अधिकार नाहीं। अर
तत्त्वविचारवाला इन बिना भी सम्यक्तका अधिकारी हो है।
बहुरि कोई जीवकें तत्त्वविचारिके होन पहलें किमी कारण पाप
देवादिककी प्रतीति होय, वा वत तपका अगीकार हाय, पाछे
तत्त्वविचार करे। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्त्वविचार भय
ही हो है। बहुरि काहूकें तत्त्वविचार भए पीछे तत्त्वप्रतीति न
होनेत सम्यक्त तौ न भया, अर व्यवहार धर्मकी प्रतीति रुचि
हाय गई, तारै देवादिककी प्रतीति करै है, वा वत तपका अगी
कार करै है, काहूकें देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त युगपत्
होय, अर वत तप सम्यक्तकी साथि भी होय, अर पहलें पीछे
भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तौ नियम है। इस बिना
सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाहीं। एने जीव तौ
पहलें सम्यक्त होय पीछे ही व्रतादिकका धार है। काहूकें युग
पत् भी होय जाय है। ऐम बहुत तत्त्वविचारवाला जीव सम्यक्तका
अधिकारी है। परन्तु याकें सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम
नाहीं। जातै शास्त्रविषय सम्यक्त होनेत पहलें पच लब्धिका
होना कदा है—

[पच लब्धियोंका स्वरूप]

शुचोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहाँ जिनको
होते सतै तत्त्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका

क्षयोपशम होय । उदयकालको प्राप्त सर्वघाती, स्पृहकनिके निपेकनिका उदयका अभाव सो क्षय, अर अनागतकालविषे उदय वावने योग्य तिनहीका सत्तारूप रहना सो उपशम, ऐसी देश-घाता, स्पृहकनिका उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम क्षयोपशम है । ताकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि है । चहुरि मोहका मद उदय आनेतेँ मदकपाय रूप भाव होय, तहां तत्त्वविचार होय सकै, सो विशुद्धलब्धि है । चहुरि जिनदक्का उपदेश्या तत्त्वका धारण होय, विचार होय सो देशनालब्धि है । जहा नरकादिविषे उपदेशका निमित्त न होय, तहां पूर्वसम्भारतेँ होय । चहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता घटकरि अत कोटाकोटा सागरप्रमाण रहि जाय, अर नवीन बध अत कोटाकोटी प्रमाण ताकै मुग्या तरेँ भागमात्र होय, सो भी तिम लब्धिकालतेँ लगाय क्रमतेँ घटता होय, केतीक पापप्रकृतिकानिका यथ क्रमतेँ मिश्रा जाय, इत्यादि योग्य अवस्थाका होना, सो प्रायोग्यलब्धि है । सो ए च्यारो लब्धि मन्य वा अम पकेँ होय है इन च्यार लत्रि मये पीछेँ सम्यक्त होय तो होय न होय तो नार्ही भी होय । ऐमें लब्धिसारविषेँ कहा है । * तातेँ तिम तत्त्वविचारवालाकैँ सम्यक्त्व होनेका नियम नार्हीं । जेँ शब्दों हितकी शिक्षा दई ताको वह जानि विचार करै, यह काम दईसो कर्म है । * तिम विचारता वाकैँ ऐमें ही है, ऐमी प्रकृति होय जाय ।

अन्यथा विचार होय, वा अन्य विचारविषे लागि, तिस सीरका निद्वार न करै, तो प्रतीति नाहो भी होय । तासै श्रीगुरु तत्वोपदेश दिया, ताको जानि विचारि करै, यहु उपदेश दिया, सो कैसे है । पीछे विचार करनेतें शक तेमै ही है, ऐसी प्रतीति होय जाय । अथवा अन्यथा विचार होय, वा अन्य विचारविषे लागि तिस उपदेशका निद्वार न करै, तो प्रतीति नाहो होय । ऐसा नियम है । याका उद्यम तो तत्वविचार करनें मात्र ही है । बहुरि पांचई करणलन्धि भए सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम है । सो जाके पूर्व कही थी च्यारि लन्धि ते तो भई होय, अर अत मुहूर्त्त पीछे जाके सम्यक्त होना होय, तिसही जीवके करणलन्धि हो है । सो इस करणलन्धियालाके बुद्धिपूर्वक तो इतना ही उद्यम हो है—जिम तत्वविचारविषे उपयोगको उद्भूत होय लगावै, ताकरि समय समय परिणाम निर्मल होते जाय है । जैसे काहुनें सीखका विचार ऐसा निर्मल होनें लग्या, जाकरि याके शीघ्र ही ताकी प्रतीति होय जासो । तैसें तत्वउपदेश ऐसा निर्मल होनें लग्या, जाकरि याके शीघ्र ही ताका श्रद्धान होसी । बहुरि इन परिणामनिका तारतम्य वेदज्ञानकरि दग्ग्या, ताकरि निरूपण करणानुयोगविषे किया है । सो इम कारणलन्धिके तीन भेद है—अध करण, अपूर्णकरण, अनिष्टिकरण । इनका विशेष व्याख्यान तो लन्धिसार शास्त्रविषे किया है, तिससें जानना । यहाँ सक्षेपसां कहिए है—

त्रिकालवर्त्ती सर्व कारणलब्धिवाले जीव तिनके परिणाम
 निका अपेक्षा ए तीन नाम हैं । तहां कारण नाम तौ परिणामका
 है । बहुरि जहां पहले पिछले समयनिके परिणाम समान होय,
 मो अधःकरण है । * जैसे कोई जीवका परिणाम तिस कारणके
 पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिए भए, पीछे समय समय अनत
 गुणी विशुद्धताकरि बधते भए । बहुरि वाकै जैसे द्वितीय तृती-
 यादि समयनिविषे परिणाम होय, तमें केई अन्य जीवनिके प्रथम
 समयविषे ही होय । ताके तिसते समय समय अनती विशुद्ध-
 ताकरि बधते होय । ऐसे अधः प्रवृत्तकरण जानना । बहुरि जिस-
 विषे पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होय, अपूर्व
 ही होय (सो अपूर्वकरण है ।) जैसे तिस कारणके परिणाम जैसे
 पहले समय होय तैसे कोई ही जीवके द्वितीयादि समयनिविषे
 न होय बधते ही होय । बहुरि इहां अधःकरणवत् जिन जीव-
 निके कारणका पहला समय ही होय, तिन अनेक जीवनिके पर-
 स्पर परिणाम समान भी होय, अर अधिक हीन विशुद्धता लिए
 भी होय । परन्तु यहां इतना विशय भया, जो इसकी उत्कृष्ट-
 तार्त भी द्वितीयादि समयवालेका जघन्य परिणाम भी अनतगुणी
 विशुद्धता लिए ही होय । ऐसे ही जिनका कारण माडे द्विती
 यादि समय भया होय, तिनके तिस समयवालोंके तौ परस्पर
 परिणाम समान वा असमान होय । परन्तु ऊपरले समयवालोंके

तिम समय समान सर्वा न होय अपु ही हीय, तें अपु
 करण१ जानना । बहुरि निसर्गिण ममान ममययता जीयनि
 परिणाम समान ही हीय, निवृत्ति कदिण परस्पर भेद ताप
 रहित हीय । जैसे तिम करणका पहला ममयविषे मय खावनि
 परिणाम परस्पर ममा ही होय, तें ही द्वितीयादि ममय
 विषे समानता परस्पर जाननी । बहुरि प्रथमादि ममययान
 द्वितीयादि ममययानाके अनतगुणी विगुहता लिण हीय,
 अनिवृत्तिकरण२ जानना । तें ए तीन करण जानने ।
 पहल अतर्गु ह्त्त काल पर्यंत अध करण होय । तहां च्यारि अ
 ष्यक हो हे । समय ममय अनतगुणी विगुहता होय, बहुरि
 अतर्गु ह्त्त परि नवीन मघकी स्थिति घटणी होय, तो म्थि
 मघापमरण होय, बहुरि समय ममय प्रशस्त प्रवृत्तिकी अ
 गुणा अनुभाग घट्टे, बहुरि, ममय समय अप्रशस्त प्रवृत्ति
 अनुभागवध अनतर्गु माग होय, तें च्यारि आशपर ही
 तहां पोळे अपूर्वकरण होय । ताका काल अध करणके क

१—समय ममय विण्णा भावा तम्हा अपुव्यकरणी हु ।

तम्हा उक्तरिमभावा इतिममावहि पथि सरिमस ।

तम्हा विदय करण अपुव्यकरणीति विरिठि ॥ लमिण ५१ ॥ करण परि
 अपुव्याणि च ताणि करणाणि च अपुव्यकरणाणि असमाजपरिणामा ति ॥
 होदि । धवला १९८८

२—एगसमय वृत्तान्त जीवार्ण परिणमहि न विज्जदे विवट्टी वि
 ज्जदे वे विवट्टीपरिणामा । धवला १९८८ । एद्विद कससमये सठण
 जइ विवट्ट नि । न विवट्ट नि तहा विव परि जमेहि विहो जीदि ॥ गो जी

सातवा अधिकार

सख्यातमं भाग है । ताविषं ए आश्रयक और होय । एव
 भतमुहूर्त्तकरि सत्ताभूत पूर्वकर्मकी स्थिति थी, ताकी घटा
 स्थितिकांडकघात होय । बहुरि तिसतैं स्तोक एक एक
 मुहूर्त्तकरि पूर्वकर्मका अनुभागको घटावै, सो अनुभाग
 घात होय, बहुरि गुणश्रेणिका कालविषं क्रमतैं असरया
 प्रमान लिए कर्म निर्जरनैं योग्य कहिए, सो गुणश्रेणी
 होय । बहुरि गुणसक्रमण यहाँ नाही हो है । अन्यत्र अपूर्व
 हो है, तदा हो है । ऐसैं अपूर्वकरण भए पीछें अनिवृत्ति
 होय । ताका काल अपूर्वकरणके भी सख्यातमं भाग है ।
 विषं पूर्वोक्त आश्रयक सहित केता काल गए पीछें अन्तर
 करै है । अनिवृत्ति करणके काल पीछें उदय आवनैं योग्य
 मिथ्यात्त्वकर्मके मुहूर्त्तमात्र निषेक तिनिका अभाव करै है,
 परिणामनिका अन्य स्थितिरूप परिणामनै है बहुरि अन्त
 णरुरि पीछें उपशमकरण करै है । अन्तरकरणकरि अम
 किए निषेकनिके ऊपरि जो मिथ्यात्वके निषेक तिनका
 आवनैका अयोग्य करै है । इत्यादिक क्रियाकरि अनिवृत्ति

१ किमन्तरकरण षाम ? विनविखयकम्माण हेष्टिमोवरिदटिळ्दीमो
 मज्जे अनोमु हूत मत्ताण टिळ्दीण परिणामविसेतेण निमंगोशममाधीकरण
 करणमिदि भण्णदे ।

जयध अ ५० १५

अथ—अन्तरकरणका क्या स्वरूप है ? उत्तर—‘विदक्षितकर्मोंकी

का अतिसमयक अनंतर जिन निपेकनिका अभाव किया था, तिनका उदयकाल आया तब निपेकनि विना उदय कौनका आये। तार्ते मिथ्यात्वका उदय न होनेतें प्रथमोपशम सम्यक्तकी प्राप्ति हो है। अनादि मिथ्यादृष्टीके सम्यक्तमोहनीय, मिथ्यमोहनीयकी मत्ता नाहीं है। तार्ते एक मिथ्यात्वकर्महीको उपशमाय उपशमसम्यग्दृष्टी होय है। यहुरि कोई जीव सम्यक्तपाय पीछे भ्रष्ट हो है, ताकी भी दशा अनादिमिथ्यादृष्टीकी मी ही होय जाय है।

यहां प्रश्न — जो परीक्षाकरि तत्त्वथद्धान किया था, ताका अभाव कैमें होय ?

ताका समाधान—जैसे किसी पुस्तकको शिक्षा देई, ताकी परोश्याकरि वाके ऐसे ही है, ऐसी प्रतीति भी आई थी, पीछे अन्यथा कोई प्रकारकरि विचार मया तार्ते उस शिक्षाविषे मदेह मया। ऐमें है कि ऐसे हैं, अथवा 'न जानों वैम है, अथवा तिस शिक्षाको झूठ जानि तिमते विपरीत भई, तब याके प्रतीति न भई तब याके तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय, अथवा पूर्वे तौ अन्यथा प्रतीति थो ही, बीचमें शिक्षाका विचारतें यथार्थ प्रतीति भई थी, यहुरि तिम शिक्षाका विचार किए बहुत काल होय गया, तब ताको भुलि जैसे पूर्वे अन्यथा प्रतीति थी, तैसे ही स्वयमेव होय गई। तब तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय जाय। अथवा यथार्थ प्रतीति पहले तौ कीन्हीं,

पाछे न तौ झिछ अन्यथा विचार किया, न बहुत काल भया ।
 परन्तु तैसा ही कर्म उदयतै होनहारकै अनुमारी स्वयमेव ही
 तिस प्रतीतिका अभाव होय, अन्यथापना भया । ऐमें अनेक
 प्रकार तिस शिखाकी यथार्थ प्रतीतिका अभाव हो है । तैसै
 बावकै तिनदेवका तत्त्वादिरूप उपदेश भया, ताकि परीक्षाकरि
 वाकै 'ऐसै ही है' ऐसा श्रद्धान भया, पीछै पूर्व जैसै कह तैसै
 बनक प्रकार तिस पदार्थश्रद्धानका अभाव हो है । सो यहू
 कयन स्थूलपन दिखाया है । तारतम्यकरि केवलज्ञानविषे
 भासै है—इस समय श्रद्धान है, कि इस समय नाहीं है । जातै
 यहाँ मूल कारण मिथ्यात्वकर्म है । ताका उदय होय, तब तौ
 अय विचारादिक कारण मिलौ, वा मति मिलौ, स्वयमेव
 सम्यकश्रद्धानका अभाव हो है । बहुति ताका उदय न होय,
 तब अय कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यकश्रद्धान
 होय जाय है । सो ऐसी जतरण ममयसवधी सूक्ष्मदशाका
 जानना, लक्षणस्थकै होता नाहीं । तातै अपनी मिथ्या सम्यक-
 श्रद्धानरूप अस्थका तारतम्य याकौ निश्चय होय सकै नाहीं ।
 केवलज्ञानविषे भासै है । तिस अपेक्षा गुणस्थाननिकी पलटनि
 शास्त्रविषे कही है । या प्रकार जो सम्यक्ततै भ्रष्ट होय, सो
 सादिमिथ्यादृष्टी कहिये । ताकै भी बहुति सम्यक्तकी प्राप्ति विषे
 पूर्वोक्त पांच लब्धि हो है । विशेष इतना यहाँ कोई जीवकै
 दर्शनमोहकी तीन प्रकृतिकी सचाहो है सो तिनकौ उपशमाय

प्रथमोपशम सम्पन्ती हो है। अथवा काहूँके सम्यक्तमोहनीयका उदय आवै है, दोष प्रकृतिनिष्ठा उदय न हो है, सो क्षयोपशम-सम्पन्ती हो है। याकं गुणश्रणी आदि क्रिया न हो है। वा अनिष्टतिकरण न हो है। बहुरि काहूँ मिथमोहनीयका उदय थाँ है, दोष प्रकृतिनिष्ठा उदय न हो है। सो मिथगुणस्थान-काँ प्राप्त हो है याँ करण न हो है। ऐँ सादिमिथ्यादृष्टीके मिथ्यात्वं छुट दृष्टा हो है। क्षायिकमम्यक्तकों वेदकमम्यगदृष्टी ही पावै है ताँ ताका कथन यहाँ ७ किया है। ऐँ सादि मिथ्यादृष्टीका जघन्य तौ मध्य अन्तर्गृह्यमात्र, उत्कृष्ट विधि नून अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तन मात्र काल जानना। देखा, परिणाम निका विचित्रता कोई जीव तौ ग्यारवै गुणस्थान यथाख्यात-चारित्र पाप बहुरि मिथ्यादृष्टी दोष किंचित् ऊन अर्द्धपुद्गल परिवर्त्तन कालपर्यंत समारमै रहै, अरु कोई नित्यनिगोदमैसौं निफसि मनुष्य होग, मिथ्यात्वं छुट पीछे अतस्तुह्यर्त्तमै केवलज्ञान पावै। ऐँ जानि अपने परिणाम बिगरनेका भय राखना। अरु तिनके सुधारनेका उपाय करना।

बहुरि इत सादिमिथ्यादृष्टीके थोरे काल मिथ्यात्वका उदय रहै, तौ याहूँ जैनीपना नाहीं नष्ट हो है। वा तत्त्वनिका अश्रद्धान व्यक्त न हो है। वा बिना विचार किए ही, या स्तोत्र विचारहीतै बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति होय जाय है। बहुरि बहुत काल मिथ्यात्वका उदय रहै, तौ जैसी अनादि मिथ्या-

दृष्टीकी दशा तैसी याकी दशा हो है । गृहीत मिध्यात्वकों भी प्रहै है । निगोदादिविष भी रूलै है । याका किछू प्रमाण नाहीं ।

बहुरि कोई जीव सम्यक्तरत भ्रष्ट होय सासादन हो है । सो तहा जघन्य एरू समय उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल रहै है, सो याका परिणामकी दशा बचनकरि कहनेमें आवती नाहीं । सूक्ष्मकालमात्र कोई जातिके केवल ज्ञानगम्य परिणाम हा हैं । तहा अनतानुबधीका तौ उदय हो है, मिध्यात्वका उदय न हो है । सो आगम प्रमाणतें याका स्वरूप जानना ।

बहुरि कोई जीव सम्यक्तरतें भ्रष्ट होय, मिश्रगुणस्थानकों प्राप्त हो है । तहा मिश्रमोहनीयका उदय हो है । याका काल मध्य अन्तर्मुहूर्त्तमात्र हैं । सो याका भी काल थोरा है, सो याकें भी परिणाम केवलज्ञानगम्य हैं । यहाँ इतना भासै है—जैमें फाटूकों मीरा दई तिसकों वह किछू सत्य किछू असत्य एक काल मानें । तैसैं तत्त्वनिका श्रद्धान अश्रद्धान एक काल होय, सो मिश्रदशा है । केई कहै हैं—हमकों तौ जिनदेव वा अन्य देव सर्व ही बदने योग्य हैं । इत्यादि मिश्र श्रद्धानकों मिश्रगुणस्थान कहै हैं, सो नाहीं । यहू तौ प्रत्यक्ष मिध्यात्वदशा है । व्यवहाररूप देवादिकका श्रद्धान भए भी मिध्यात्व रहै है, तो याकें तौ देव बुदेवका किछू ठीक ही नाहीं । याकें तौ यहू विनयमिध्यात्व प्रगट है ऐसैं जानना । ऐमें

सन्मृष्ट मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया। प्रसंग प
 कथन किया है। या प्रकार जैनमतवाले मि
 स्वरूप निरूपण किया। यहां नाना प्रकार मि
 कथन किया है, ताका प्रयोजन यह जानना, जे
 निकी पहिचानि आपविष ऐमा दोष हाय, तौ स
 सम्पदप्रदानो होना। औरनिहीके ऐसे दाप दणि
 होना। जाते अपना मलाबुरा तौ अपने परिणा
 औरनिकी रुचिमान दणिये, तौ कलु उपदेश दे
 मला कौनिये। ताते अपने परिणाम सुधारनेका
 योग्य है। सर्व प्रकारके मिथ्यात्वभाव छो
 होना योग्य है। जाते ससारका मूल मिथ्यात्व
 समान अन्य दाप नाहीं है। एक मिथ्यात्व अ
 धनतानुरधीका अमार भए इकतालिस प्रकृति
 ही मिट जाय। स्थिति अन्तःकोटाकोटी सागर
 अनुभाग थोरा ही रह जाय। शीघ्र ही मोक्ष
 षडुरि मिथ्यात्वका सद्भाव रहे अय अनेक उ
 सोक्ष मार्ग न होय। ताते जिस तिम उपाय
 मिथ्यात्वका नाश करना योग्य है।

इति भौक्षमाग प्रकाशक नाम शास्त्रविषे जैनमतवाले
 निरूपण जासे भया एमा साक्षदा अधिकार सपु

आचार्य कल्प प० टोडरमलजी रचित

कवित्त (मनहरण ३१ वर्ण)

कोऊ नय निश्चय से आत्मा को शुद्ध मान ।

भये हैं स्वच्छन्द न पिछाने निज शुद्धता ॥

कोऊ व्यवहारदान शील तप भाव को ही ।

आत्म को हित जान छाँडत न मुद्धता ॥१॥

कोऊ व्यवहारनय निश्चय के मारग को ।

भिन्न भिन्न पहिचान करै निज उद्धता ॥२॥

पर जाने निश्चय के भेद व्यवहार सब ।

कारण है उपचार माने तप :